स्वच्छ भारत
एक कदम स्वच्छता की ओर

सत्यमेव जयते

Digital India
Power To Empower

मृदा प्रदूषण: नियंत्रण एवं प्रबंधन

भारत सरकार
वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग
मानव संसाधन विकास मंत्रालय
(उच्चतर शिक्षा विभाग)

GOVERNMENT OF INDIA
Commission for Scientific and Technical Terminology
Ministry of Human Resource Development
(Department of Higher Education)

मृदा प्रदूषणः नियंत्रण एवं प्रबंधन

वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग
मानव संसाधन विकास मंत्रालय
(उच्चतर शिक्षा विभाग)
भारत सरकार

Commission for Scientific and Technical Terminology
Ministry of Human Resource Develoment
(Department of Higher Education)
Government of India

2018

© भारत सरकार, 2018

© Government of India, 2018

प्रथम संस्करण, 2018
मूल्य देश में :
विदेश में :

प्रकाशक: वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग
पश्चिमी खंड–7, रामकृष्णपुरम्
नई दिल्ली – 110 066
वेबसाइट: www.cstt.nic.in

बिक्री का पता:

(1) **बिक्री अनुभाग**
वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग
पश्चिमी खंड – 7, रामकृष्णपुरम्
नई दिल्ली – 110066

(2) **प्रकाशन नियंत्रक, भारत सरकार**
सिविल लाइन्स, दिल्ली – 110054.

लेखकीय

मृदा एक महत्वपूर्ण प्राकृतिक संसाधन है। बढ़ते हुए औद्योगिकीकरण, रासायनिक उर्वरकों तथा कीटनाशियों के अविवेकपूर्ण प्रयोग ने पर्यावरण के अन्य घटकों–वायु, जल के साथ ही मृदा तक को प्रदूषित कर दिया है, जिसके फलस्वरूप मृदा की उर्वरता एवं उत्पादकता पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ा है। निरंतर बढ़ती हुई जनसंख्या के भरण–पोषण के लिए मृदा की उर्वरता एवं उत्पादकता को बनाए रखना आवश्यक है, अन्यथा जीवन का आधार ही समाप्त हो जायेगा। अतः मृदा प्रदूषण का नियंत्रण एवं प्रबंधन अति आवश्यक है।

यदि जीवनदायिनी मृदा ही प्रदूषित हो गई तो समस्त जीवित प्राणी प्रभावित हुए बिना नहीं रहेंगे और उनका जीवन खतरे में पड़ जायेगा। अतः आज आवश्यकता इस बात की है कि प्रत्येक व्यक्ति को प्रदूषण के विषय में जानकारी दी जाए। इसी उद्देश्य को ध्यान में रखते हुए प्रस्तुत पाठमाला (मोनोग्राफ) "मृदा प्रदूषणः नियंत्रण एवं प्रबंधन" का प्रणयन किया गया है। विश्वास है कि, प्रस्तुत मोनोग्राफ स्नातक एवं स्नातकोत्तर स्तर के विद्यार्थियों सहित सभी के लिए उपयोगी सिद्ध होगा। मोनोग्राफ से संबंधित सुझावों का स्वागत है।

डॉ० दिनेश मणि

आमुख

भारत सरकार ने विश्वविद्यालय स्तर पर शिक्षा माध्यम के रूप में हिंदी तथा अन्य भारतीय भाषाओं के विस्तार के लिए तत्कालीन शिक्षा मंत्रालय (संप्रति–मानव संसाधन विकास मंत्रालय) के अधीन सन् 1961 में वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग की स्थापना की। इस लक्ष्य की प्राप्ति के लिए आयोग ने अनेक पारिभाषिक कोशों, चयनिकाओं, शब्द–संग्रह, परिभाषा कोश, पत्रिकाएं, चयनिकाएं, पाठमालाएं आदि प्रकाशित हो चुकी है।

पाठमालाओं के निर्माण में इस बात का पूरा ध्यान रखा गया है। कि उनकी विषय सामग्री उपयोगी तथा उद्यतन हो और भाषा सरल, प्रवाहपूर्ण, बोधगम्य और आकर्षक हो ताकि अध्यापक भी हिंदी माध्यम में अपने–अपने विषय पढ़ाने में सक्षम हो सकें।

प्रस्तुत पाठमाला "मृदा प्रदूषण : नियंत्रण एवं प्रबंधन" इलाहाबाद विश्वविद्यालय के रसायनशास्त्र विभाग के उपाचार्य डॉ. दिनेश मणि द्वारा लिखि गई है, जो चौदह अध्यायों में विन्यस्त है। लेखक ने मृदा प्रदूषण के विविध आयामों पर गहनता से लेखनी चलाई है। इसके अतिरिक्त प्रस्तुत पाठमाला में भारी धातुओं, रासायनिक उर्वरक, पीडकनाशी से होने वाले मृदा प्रदूषण पर विशेष रूप से चर्चा की गई है। इसका पुनरीक्षण डॉ. ओ.पी. श्रीवास्तव, विभागाध्यक्ष, कृषि रसायन एवं मृदा विज्ञान विभाग, कृषि विज्ञान संस्थान, बनारस हिंदू विश्वविद्यालय, वाराणसी ने किया है। समन्वयन के लिए डॉ. अशोक सेलवटकर, ब्यूरों प्रमुख, कृषि विज्ञान एवं पशु चिकित्सा विज्ञान, वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग प्रशंसा के पात्रा हैं।

पाठमाला की भाषा सरल, बोधगम्य और प्रवाहपूर्ण है। लेखन ने इसमें हिंदी की मानक तकनीकी शब्दावली का प्रयोग किया और पुस्तक के अंत में उपयोगी सारणियाँ, संदर्भ तथा तकनीकी हिंदी शब्दावली भी दी है।

मुझे विश्वास है कि यह पाठमाला, सनातक एवं स्नोकोत्तर स्तर के विद्यार्थियों के लिए व जन सामान्य के लिए भी बहुत लाभप्रद सिद्ध होगी।

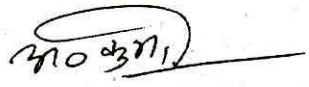

(प्रोफेसर अवनीश कुमार)
अध्यक्ष

नवम्बर 2018
नई दिल्ली

समन्वय तथा संपादन

प्रमुख संपादक

प्रोफेसर अवनीश कुमार

अध्यक्ष

संपादक एवं समन्वयक

डॉ. अशोक एन. सेलवटकर

सह-संपादक

शैलेन्द्र सिंह

पुनरीक्षण

प्रो. जे. एस. श्रीवास्तव

पूर्व विभागाध्यक्ष, कवकविज्ञान व पादप-रोग विज्ञान विभाग

कृषिविज्ञान संस्थान, बनारस हिंदू विश्वविद्यालय, वाराणसी

विशेष सहयोग

श्री देवेंद्र दत्त नौटियाल
पूर्व सचिव, शब्दावली आयोग
मानव संसाधन विकास मंत्रालय
भारत सरकार

एवं

डॉ. ओ. पी. अवस्थी
प्रधान वैज्ञानिक
फल एवं उद्यान प्रौद्योगिकी
संभाग, भारतीय कृषि
अनुसंधान संस्थान, नई दिल्ली–12

प्रकाशन

श्री शिव कुमार चौधरी

सहायक निदेशक

विषय–सूची

अध्याय		पृष्ठ
1.	प्रस्तावना / विषय प्रवेश	1–5
2.	मृदाः एक बहुमूल्य प्राकृतिक संसाधन	6–13
3.	मृदा प्रदूषणः अर्थ एवं परिभाषा	14–21
4.	मृदा प्रदूषण के स्रोत	22–47
5.	भारी धातुएं और मृदा प्रदूषण	48–52
6.	अपशिष्ट पदार्थ और मृदा प्रदूषण	53–69
7.	रासायनिक उर्वरक और मृदा प्रदूषण	70–76
8.	पीड़कनाशी और मृदा प्रदूषण	77–82
9.	वाहितमल सीवेज, आपंक (स्लज) और मृदा प्रदूषण	83–85
10.	प्रदूषित मृदा और भू–जल प्रदूषण	86–92
11.	मृदा प्रदूषण के प्रभाव	93–104
12.	मृदा प्रदूषणः नियंत्रण एवं प्रबंधन	105–149
13.	मृदा संरक्षण	150–165
14.	उपसंहार	166–186

परिशिष्ट

उपयोगी सारणिया	173–184
शब्दावली	
अंग्रेजी–हिंदी	185–189
हिंदी–अंग्रेजी	190–195

अध्याय – 1

प्रस्तावना

मृदा एक अति महत्वपूर्ण संसाधन है। विकास और समृद्धि के मापदंड को तय करते समय वर्तमान समाज के भविष्य की संभावनाओं पर भी विचार किया जाना चाहिए। आज संपूर्ण विश्व, आधुनिक कृषि पद्धति के गंभीर संकट के प्रभावित है। दोषपूर्ण कृषि–क्रियाओं के कारण मृदा के स्वास्थ्य एवं उपजाऊपन में कमी, फसल उत्पादों की गुणवत्ता में कमी, वैश्विक तापन, मौसम की विषमताएं एवं उत्पादकता में कमी जैसी समस्याएं सामने आ रही है। साथ ही खेती में कृषि रसायनों के अत्यधिक इस्तेमाल से वायु, जल और मृदा प्रदूषण में लगातार वृद्धि हो रही है, जिसके परिणामस्वरूप मानव स्वास्थ्य पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ रहा है।

फसलोत्पादन की वृद्धि से संबंधित समस्याएं सर्वत्र विद्यमान हैं। सामान्यतया अच्छी मृदाएं उन देशों में नहीं हैं जिन देशों की जनसंख्या बहुत अधिक है, किंतु वहाँ उनकी अत्यधिक आवश्यकता है। हरित क्रांति के साथ फसल उत्पादकता में जो वृद्धि हुई, वह अब स्थिर सी हो गई है। सघन खेती के परिणामस्वरूप उत्पन्न पर्यावरणीय समस्याओं, प्रभावों ने अनेक देशों की उपलब्धियों को शिथिल किया है। पेयजल में नाइट्रेट एवं खाद्य पदार्थों में जीवनाशी अवशेषों की संभावित विद्यमानता, जन समुदाय के

लिए समस्या बन गई है और वे आधुनिक खेती के मुख्य कारणों के मूल्य पर प्रश्न चिह्न बनने लगी है।

संपूर्ण विश्व, पर्यावरण तथा प्राकृतिक संसाधनों के खतरों को लेकर विशेषकर मृदा तथा जल को लेकर चिंतित है। जो प्रौद्योगिकी प्रारंभ में वरदान सिद्ध हुई, वही अब एक विडंबना बन चुकी है। इसने जीवन स्तर को सुधारा किंतु पर्यावरण की गुणवत्ता में कमी स्पष्ट दिख रही है। किसानों के लिए सिंचाई वरदान प्रतीत हुई जब उसके अनुपजाऊ खेत लहलहाने लगे किंतु वही सिंचाई कालांतर में अभिशाप बन गई जब चारों ओर ऊसर ही ऊसर बन गए। इसी तरह उर्वरकों तथा पीड़कनाशियों के आने से जहाँ कृषि उपज में आशातीत वृद्धि हुई, वहीं इनके निरंतर उपयोग ने खतरा उत्पन्न कर दिया। जनसंख्या की बेतहाशा वृद्धि ने मृदा के अधिकाधिक उपयोग के लिए प्रेरित किया, जिससे मृदा का ह्रास होना शुरू हुआ । आधुनिक कृषि निवेशमयी और प्रौद्योगिकीमय है जिसके फलस्वरूप मृदा, आम जन की चिंता का विषय बन चुकी है।

पृथ्वी को अन्नपूर्णा कहा गया है, पृथ्वी की अनेक प्रकार से स्तुतियां की गई हैं और हमारे पूर्वजों ने ध्यान रखा था कि पृथ्वी से उतना ही लिया जाए जितनी आवश्यकता है, उसका अतिदोहन न हो, किंतु वर्तमान युग में, विशेषकर औद्योगीकरण के फलस्वरूप पृथ्वी के समस्त संसाधनों का निर्ममतापूर्वक दोहन हुआ है। खानों का कोयला, खनिज सभी अंतिम सांसें ले रहे हैं। प्रगति के दौर में प्लास्टिक जैसी सामग्री का आविष्कार करके वैज्ञानिकों ने जनता के उपयोग हेतु ऐसा पदार्थ प्रदान किया है, जिसका अपशिष्ट सदियों तक विघटित न होकर मृदा के पृष्ठ पर पड़ा रह सकता है। स्थिति गंभीर हो चुकी है।

जिस तरह पूरे विश्व में नाभिकीय ऊर्जा प्राप्त करने के लिए रिऐक्टर लगाए जा रहे हैं, उनके क्षतिग्रस्त होने पर प्रचुर

रेडियोसक्रियता चतुर्दिक् पर्यावरण को प्रदूषित करती है, रेडियोसक्रिय धूल में 90Sr समस्थानिक हैं, जो पृथ्वी पर धूल के गिरने पर मृदा के कणों से बँध जाते हैं और धीरे–धीरे वनस्पतियों द्वारा अवशोषित होकर पशुओं के शरीर के भीतर पहुँचकर उन्हें रोगग्रस्त कर देते हैं। यह देखा गया है कि Sr90 का उद्ग्रहण चूना डाली गई मृदा की तुलना में अम्लीय मृदाओं में ज्यादा होता है।

वायु, जल, रसायन, आदि सभी ने मृदा को विषाक्त बना दिया है। ऐसा नहीं है कि रुग्ण मृदा, स्वस्थ नहीं बन सकती है, किंतु इसके लिए विशेष उपचार और दीर्घकालीन प्रबंधन की आवश्यकता होगी। मृदा को रुग्ण रहने भी नहीं दिया जा सकता। उसी से राष्ट्र की जनसंख्या की उदर पूर्ति भी होनी है। अतः मृदा स्वास्थ्य के प्रति, सतर्कता की आवश्यकता है। आधुनिक सभ्यता– 'इस्तेमाल करो और फेंको' के कारण मृदा पर सभी प्रकार का प्रदूषण बढ़ा है। उस पर अथाह कूड़ा कचरा लादा जा रहा है, उसके जल स्रोतों को विषाक्त बनाया जा रहा है। 'जिओ और जीने दो' के मंत्र को अपनाए बिना मृदा स्वस्थ नहीं रह सकती और यदि मृदा स्वस्थ नहीं होगी तो वह अपने राष्ट्रवादियों की उदरपूर्ति नहीं कर पाएगी।

मृदा के जीव–जंतु हमारी ही तरह सांस लेते और जल का उपयोग करते हैं जब जलवायु तथा जल दोनों ही प्रदूषित हो चुकें हों तो स्वस्थ पादप जीवन या सूक्ष्मजीवों के जीवित रहने की आशा करना व्यर्थ है। यही भी मृदा रुग्णता ही है।

मृदा स्वास्थ्य का अर्थ मृदा में पर्याप्त वातन होना, उसमें पर्याप्त जल होना तथा पोषक तत्वों का यथेष्ट मात्रा में विद्यमान होना। आज जब वायुमंडल प्रदूषित है तो यह संभव नहीं है कि मृदा–वायु दूषित न हुई हो क्योंकि बाह्य वायुमंडल से मृदा–वायु का निरंतर आदान–प्रदान होता रहता है जिस गति से औद्योगीकरण

हुआ है, उसका सबसे बड़ा दुष्परिणाम वायु में कार्बन डाई ऑक्साइड के अलावा सल्फर डाई ऑक्साइड, नाइट्रोजन के ऑक्साइड जैसी विषैली गैसों में वृद्धि का होना है।

मृदा–वायु में पहले से कार्बन डाई ऑक्साइड की मात्रा अधिक रहती है जो कभी–कभी पौधों के लिए विषाक्त बन जाती है। वायुमंडल की इन विषैली गैसों के मृदा–वायु में मिल जाने से मृदा जीवाणु बुरी तरह से प्रभावित हो सकते हैं।

जल को जीवन कहा गया है, मृदा–जल भी पौधों तथा सूक्ष्म जीवों के लिए उतना ही आवश्यक है जितना मनुष्य के लिए प्राकृतिक जल। चूँकि इस समय पृथ्वी की सतह पर का जल ही नहीं भौम जल भी बुरी तरह से विषैले यौगिकों से युक्त है अतः पेड़–पौधों को उस विषाक्त जल पर निर्भर रहना पड़ रहा है।

मृदा को स्वच्छ एवं स्वस्थ रखने में मृदा सूक्ष्मजीवों की महती भूमिका है। बहुत हद तक ये मृदा में प्रविष्ट होने वाले कार्बनिक अपशिष्टों का विघटन करके उपयोगी पोषण तैयार करते हैं किंतु अब ऐसे औद्योगिक या रासायनिक अपशिष्टों को मृदा में इतनी बड़ी मात्रा में डाला जा रहा है कि सूक्ष्मजीव इसे विघटित करने में असमर्थ हैं। स्पष्ट है मृदाएं धीरे–धीरे रुग्ण बनती जा रही हैं। सभ्य मानव को अपनी रुग्णता की तो परवाह है, परंतु वह मृदा रुग्णता के विषय में सोच नहीं पा रहा है। ऐसी विषम स्थिति में मृदाओं का विशेषकर महानगरों के आसपास की मृदाओं का बुरी तरह से प्रदूषित होकर रुग्ण या अस्वस्थ होना कोई बड़ी बात नहीं होती।

भविष्य में कृषि भूमि के क्षेत्रफल के बढ़ने की संभावना नगण्य है। अतः फसल उत्पादन में और अधिक वृद्धि प्राकृतिक संसाधनों जैसे मृदा एवं जल तथा कृषि उपादानों के बेहतर प्रबंधन द्वारा ही संभव है। यदि मृदा के प्रदूषण नियंत्रण तथा

प्रबंधन पर समुचित ध्यान नहीं दिया गया तो आने वाले वर्षों में भुखमरी, कुपोषण और कुपोषणजनित बीमारियों का सामना करना पड़ सकता है।

मृदा में कृषि रसायनों के अत्यधिक एवं असंतुलित इस्तेमाल से मृदा के भौतिक रासायनिक एवं जैविक गुणों में बदलाव आया है, जिसका प्रभाव ऐसी मृदा में उगाई जाने वाली फसलों पर पड़ा है। निःसंदेह, इन कृषि रसायनों के इस्तेमाल से कृषि उत्पादन में वृद्धि हुई है लेकिन मृदा स्वास्थ्य पर प्रतिकूल असर पड़ने से मृदा उत्पादकता कम होती जा रही है। मृदा स्वास्थ्य से आशय है कि मृदा की भौतिक, रासायनिक एवं जैविक दशायें सतत फसलोत्पादन के अनुकूल बनी रहें। सतत उत्पादन के लिए आवश्यक है कि मृदा को स्वस्थ बनाए रखा जाय जिससे हम वर्तमान की जनसंख्या की खाद्यान्न आपूर्ति के साथ–साथ भविष्य की संततियों की आवश्यकता को भी पूरा करने मे सक्षम हो सकें।

अध्याय – 2

मृदाः एक बहुमूल्य प्राकृतिक संसाधन

मृदा एक महत्वपूर्ण प्राकृतिक संसाधन है। इस समय देश में 14.20 करोड़ हेक्टेयर क्षेत्र में खेती की जा रही है। यह भूमि भी धीरे–धीरे कम होती जा रही है। अनुमान है कि वर्ष 2025 में भारत की आबादी 125 करोड़ हो जाएगी, तब वर्तमान उत्पादकता के आधार पर खाद्यान्न की जरूरतें पूरी करनी हैं तो उसे 2025 तक कम से कम 3 करोड़ टन नाइट्रोजन, फॉस्फोरस तथा पोटाश की जरूरत पड़ेगी। यह उर्वरक भी तभी पर्याप्त होगा जब जैव–उर्वरक और गोबर की खाद का पर्याप्त उपयोग किया जाए और वह सर्वत्र सामान्य रूप में उपलब्ध हो। अभी रासायनिक उर्वरकों के मामले में भारी असंतुलन है। जहाँ पंजाब में 167 किलोग्राम उर्वरक प्रति हेक्टेयर इस्तेमाल किया जाता है, वहीं असम में इसका उपयोग सिर्फ 2 किलोग्राम प्रति हेक्टेयर ही है।

सघन खेती वाले क्षेत्रों में मृदा की उर्वरा शक्ति में कमी दिखाई दे रही है। एक अनुमान के अनुसार मृदा के 340 लाख टन प्रतिवर्ष प्रमुख पोषक तत्वों–नाइट्रोजन, फॉस्फोरस तथा पोटाश का दोहन होता है और उर्वरकों के माध्यम से केवल 260 लाख टन की आपूर्ति हो पाती है। इस प्रकार 80 लाख टन पोषक तत्वों की कमी प्रतिवर्ष हो रही है। इस कारण मृदा की

उर्वरता लगातार घट रही है। मृदा से पोषक तत्वों के लगातार दोहन के साथ–साथ अपर्याप्त व असंतुलित उर्वरक उपयोग के परिणामस्वरूप गौण व सूक्ष्मपोषक तत्वों की कमी आई है। वर्तमान में भारतीय मृदाओं में नाइट्रोजन, फॉस्फोरस, पोटाश, सल्फर, जिंक और बोरॉन की कमी क्रमशः 79, 80, 50, 40, 48 और 33 प्रतिशत है जिसके कारण मृदा–स्वास्थ्य पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ रहा है।

तेजी से पैदावार बढ़ाने के उत्साह में भूमि से जितना पोषक तत्व लिया गया है, उतना वापस नहीं लौटाया गया है। यही वजह है कि आज हमारे देश के खेत की मिट्टी में करीब 5 लाख टन सल्फर की कमी है, तो 2025 तक 20 लाख टन हो जाएगी। उस समय मिट्टी को पर्याप्त उपजाऊ कहलाने के लिए 324 हजार टन जिंक, 30 हजार टन लोहा, 11 हजार टन ताँबा, 22 हजार टन मैंगनीज और 4 हजार बोरोन की जरूरत होगी। जैव उर्वरक कंपोस्ट गोबर की खाद तथा फसलों के क्रम के सही चुनाव कुछ ऐसे तरीके हैं, जिनसे रासायनिक उर्वरकों की मात्रा को नियंत्रित किया जा सकता है।

एक अनुमान के अनुसार 2035 तक कृषि योग्य भूमि की उपलब्धता 0.08 हेक्टेयर प्रति व्यक्ति रह जाने की संभावना है। अतः बढ़ती हुई जनसंख्या की माँगों को पूरा करने के लिए यह आवश्यक है कि मृदाक्षरण को रोका जाए तथा बेकार, बंजर, ऊसर, क्षारीय अम्लीय तथा निम्नीकृत मृदाओं को सुधारा जाए। मृदा वैज्ञानिकों के अनुसार देश की आधी से ज्यादा खेती योग्य जमीन किसी न किसी समस्या से ग्रस्त है। यह अनुमान नागपुर में स्थित राष्ट्रीय भूमि उपयोग और नियोजन ब्यूरो ने लगाया है। इस केंद्र में उपग्रह चित्रों की मदद से भारत के सभी राज्यों की मिट्टियों के नक्शे बनाए गए हैं। अनुमान है कि देश की करीब

13 करोड़ हेक्टेयर जमीन बंजर हो चुकी है। इन जमीनों को उपजाऊ बनाकर खेती लायक बनाने की तकनीकें मौजूद हैं, पर मुश्किल से 40 लाख हेक्टेयर जमीन ही सुधारी गई हैं।

अधिक उपज देने वाली फसलों और संकरों के प्रचलन के बाद अधिक पैदावार लेने के लिए प्रतिस्पर्धा ऐसी बढ़ी कि हमारा ध्यान इस बात की ओर गया ही नहीं कि यह पद्धति कब तक चल पाएगी। इसी का नतीजा है कि ये सारी पद्धतियां जवाब दे चुकी हैं और उत्पादकता के स्तर को घटाने वाली नई–नई समस्याएं उभरने लगी हैं। इस तरह की कुछ समस्याएं हैं–पोषक तत्वों की दक्षता में कमी, मिट्टी में अनेक पोषक तत्वों का असंतुलन, मिट्टी के भौतिक, रासायनिक गुणों में प्रतिकूल परिवर्तन, पानी का दुरुपयोग, मिट्टी और पानी का प्रदूषण और कीटव्याधिग्रस्त रोगों व खरपतवारों की समस्या। इन समस्याओं से निपटने के लिए जहाँ हम एक ओर फसलों की सघनता का ध्यान रख रहे हैं, वहीं देश के विभिन्न भागों के लिए फलदार फसलों को शामिल करते हुए ऐसी फसल पद्धतियाँ विकसित करने लगे हैं जो हर हाल में टिकाऊ साबित हो। अधिक मूल्य वाली फसलों में चुने गए फसल–चक्रों में मुख्य रूप से सूरजमुखी, सोयाबीन, मूँगफली, सरसों और बासमती धान इत्यादि शामिल किए गये हैं। इसी तरह कृषि की उत्पादकता और टिकाऊपन को ध्यान में रखते हुए समेकित पोषक प्रबंध और समेकित कीट प्रबंधन तकनीकों का अधिकाधिक प्रचलन किया जा रहा है। पानी की बचत के लिए कृषि में प्लास्टिक के उपयोग द्वारा छिड़काव एवं रिसाव सिंचाई विधि के उपयोग की संभावनाओं पर भी हम विशेष ध्यान दे रहे हैं।

सघन कृषि पद्धतियों के कारण मौलिक संसाधनों का अंधाधुंध इस्तेमाल हुआ है और मिट्टी में फसल के अवशेष शायद ही छोड़े जाते हैं। इस तरह मिट्टी में जीवांश की कमी होने से

उसकी उपजाऊ शक्ति दिनोंदिन घटती जा रही है। इसी का नतीजा है कि गेहूँ–धान इत्यादि मुख्य फसल आधारित चक्रों में उपज का स्तर एक सीमा तक बढ़ने के बाद अब ठहराव पर पहुँच गया है। दीर्घकालीन उर्वरता परीक्षणों से भी यह सिद्ध हुआ है कि अकार्बनिक खादों के साथ–साथ कार्बनिक खादों का उपयोग करके ही मिट्टी की उर्वरता को टिकाऊ स्तर पर बनाए रखा जा सकता है। चीन में गेहूँ–धान फसल चक्र में पिछले एक सौ साल से ज्यादा समय से उत्पादकता का ऊँचा स्तर बनाए रखने में इसीलिए सफलता मिल पाई, क्योंकि वहाँ नाइट्रोजन की आवश्यकता की पूर्ति के लिए 50 प्रतिशत से अधिक नाइट्रोजन ही कार्बनिक स्रोत से प्राप्त की गई है। इसी फसल प्रणाली में हमारे यहाँ रासायनिक उर्वरकों के प्रयोग ने तीन दशकों में ही ठहराव की स्थिति उत्पन्न कर दी। इससे समेकित पोषक तत्व प्रबंधन के महत्व का पता लगता है।

मानव समाज की जरूरत केवल अनाज तक ही सीमित नहीं है। हमें आवास के लिए आदि की जरूरत भी है और इसी प्रकार विविध कृषि कार्यों के लिए लकड़ी चाहिए। कहने का तात्पर्य यह है कि कृषि क्षेत्रफल में और वृद्धि करना असंभव है। इससे एकमात्र दो हल हो सकते हैं पहला, खाद्यान्न फसलों की उत्पादकता बढ़ाकर अधिक पैदावार लेना और दूसरा, विभिन्न राज्यों में लाखों हेक्टेयर बेकार बंजर/ऊसर भूमि को उपजाऊ बनाकर अनाज पैदा करना।

संसाधनों के उपयोग की दृष्टि से हमारी यह शताब्दी एक अपव्ययी शताब्दी रही हैं जनसंख्या की तीव्रवृद्धि के साथ–साथ पृथ्वी के संसाधन स्रोतों का उपयोग, जिस तीव्रगति से हुआ है, विश्व के ज्ञात इतिहास में उसका कोई मुकाबला नहीं है। मृदा इसका अपवाद नहीं है। इसका भी भरपूर दोहन किया है। आहार

की खोज में भूपृष्ठ मृदा, (जिसमें मानव आहार हेतु अन्न, पशु आहार हेतु चारे और वस्त्र हेतु रेशों के उत्पादन के लिये सारी आवश्यक उर्वरता निहित होती है) का उपयोग पीढ़ी दर पीढ़ी ऐसे ढंग से किया जाता रहा है, जो पोषक संरक्षण या अनिवार्य उर्वरता के अनुरक्षण की दृष्टि से अत्यंत हानिकारक है। इससे मानव के समक्ष विशेषकर विश्व के घनी आबादी वाले इलाकों जैसे भारत के सामने एक कठिन स्थिति पैदा हो गई है, क्योंकि ऐसे इलाकों में खाद्य अभाव और बढ़ती हुई जनसंख्या, की समस्याओं से हर आदमी विचलित है। जहाँ तक उर्वरता का प्रश्न है, मृदा एक ऐसा प्राकृतिक साधन/या स्रोत है, जिसका नवीनीकरण स्वतः होता रहता है। लेकिन मृदा के अत्यधिक उपयोग और दुरुपयोग से मानव ने इस प्राकृतिक संतुलन को बिगाड़ दिया है। मानव ने जितना कुछ मृदा से प्राप्त किया है उतना निष्ठापूर्वक पोषक तत्वों के रूप में मृदा को लौटाया नहीं है। मृदा के बारे में हमारी मूलभूत या बुनियादी जानकारी तीव्रदर से बढ़ी है, लेकिन मृदा प्रबंधन की कुशलता किसानों में बहुत मंद गति से आ रही है जिसके कारण मृदा उर्वरता में तीव्र गिरावट आई है एवं प्रति एकड़ उपज में कमी हो गई है और भारत में विशेषकर पिछले कुछ दशकों में कृषि उत्पादन पर्याप्त नहीं हो पाया है।

मृदा उर्वरता, मुख्य और गौण आवश्यक–पोषक तत्वों की भूपृष्ठ मृदा के अंतर्गत पर्याप्त मात्रा और सुलभ रूप में उपस्थिति का परिणाम होती है। इसके अलावा मृदा में जैव पदार्थों का भी बड़ा महत्व है, इससे मृदा को भौतिक और सूक्ष्म जैविक लाभ मिलते हैं, क्योंकि जैव पदार्थ की पर्याप्त मात्रा मृदा को एक जीवित या सक्रिय पिंड बनाए रखती है। इसलिये इन मृदा उर्वरता तत्वों की मृदा में मौजूदा स्थिति क्या है, ये मृदा में कैसे

घटते बढ़ते हैं और इनको किन रूपों और स्तरों पर किन साधनों से अनुरक्षित किया जाता है जिससे इनके दीर्घकालीन उपयोग से फसलोत्पादन अधिक हो सके आदि मृदा उर्वरता से संबंधित किसी भी चर्चा से पूर्व इन सभी पक्षों पर विचार करना आवश्यक होगा और इन सब पक्षों की सामान्य जानकारी से यह बुनियादी जानकारी हो जाएगी कि व्यावहारिक रूप से मृदा उर्वरता का अनुरक्षण कैसे किया जाए और जहाँ इसकी क्षति हुई है वहाँ इसको कैसे बढ़ाया जाए। इस समस्याओं पर विशेष रूप से भारतीय दशाओं और स्थितियों के परिप्रेक्ष्य में विचार किया जाना है।

मृदा जीवन का मूल आधार है, इससे लोगों को भोजन, वस्त्र और आश्रय तथा पशुओं के लिए चारा प्राप्त होता है। मानव को सारे खाद्य पदार्थ–सब्जियाँ, अनाज, दूध, अंडा, माँस या फल आदि, पहनने के लिये ऊनी सूती और रेशमी वस्त्र तथा पशुओं को खिलाने के लिए सभी प्रकार के चारे, मृदा में विद्यमान उर्वरता से प्राप्त होते हैं। इस प्रकार मृदा उर्वरता संपूर्ण मानव अस्तित्व का आधार है। वस्तुतः मृदा उर्वरता पृथ्वी के संपूर्ण प्राणियों का और पूरे विश्व की सभ्यता का आधार है। अतः मृदा की उर्वरता को उच्चस्तर पर एवं उत्पादक बनाए रखना आवश्यक है। अनुर्वर भूमियों पर रहने वाले लोग प्रायः अस्वस्थ और अभावग्रस्त होते हैं, जबकि उर्वर और उपजाऊ भूमियों पर रहने वाले लोग प्रायः स्वस्थ और समृद्ध होते हैं। किसी देश की कृषि संबंधी जटिल समस्याओं के अध्ययन में निःसंदेह मृदा उर्वरता के अध्ययन का सबसे अधिक महत्व है।

मृदा उर्वरता से हमारा आशय मृदा की उस क्षमता से है, जिससे लाभप्रद फसलों का उत्पादन होता है। मृदा उर्वरता को मृदा उत्पादकता नहीं समझना चाहिए। मृदा उत्पादकता मृदा की

वह क्षमता है, जिससे फसलों की एक निश्चित पैदावार होती है और मृदा की उक्त क्षमता मृदा में निहित उन कारकों पर निर्भर करती है जो उसकी फसलोत्पादन क्षमता का निर्धारण करते हैं। ये कारक हैं– मृदा में आवश्यक पोषक तत्वों का संतुलित और सुलभ रूप में मौजूद रहना, पोषक तत्वों की निर्मुक्ति के लिए स्वस्थ वातावरण निर्माण हेतु मृदा का उचित सूक्ष्मजैविक स्तर बनाए रखना तथा मृदा की किसी विषैली या हानिकारक दशा या तत्वों से मुक्ति। इस प्रकार यह आवश्यक नहीं है कि कोई मृदा उर्वर और मृदा उत्पादक भी हो, जैसे रहने के कारण, अधिक उपज नहीं दे सकती है। इसी प्रकार उर्वर मृदा में लवण, क्षार या बोरोन लवण अधिक हो सकते हैं जो पादप वृद्धि के लिए विषैले होते हैं और मृदा की फसलोत्पादन क्षमता को सीमित करते हैं। इसके विपरीत किसी कम उर्वर रेतीली मृदा में आवश्यक मात्रा में उर्वरक और सिंचाई की व्यवस्था करके अधिक उपज ली जा सकती है। मृदा की फसलोत्पादन की उच्च क्षमता कुछ क्षेत्रों में किसी हानिकारक या विषैले तत्वों की अधिक मात्रा में उपस्थिति से घट सकती है। इन कारणों के अलावा कुछ ऐसे कारक भी हैं, जो एक प्रकार की दशाओं के अंतर्गत बहुत कुछ स्थिर अवस्था में रहते हैं, इन कारकों को मानव प्रयास द्वारा भी नहीं बदला जा सकता है। जहाँ इस प्रकार की मृदा विद्यमान है वहाँ उसके कारण मृदा प्रकार, प्रकृति और जलवायु है। मानव द्वारा नियंत्रित न किए जा सकने वाले मृदा कारकों में स्थलाकृति, मृदा गठन और मृदा परिच्छेदिका की गहराई आदि उल्लेखनीय है। इसी तरह तापमान, प्रकाश, तीव्रता, वाष्पन, पाला आदि जलवायु कारकों को भी मानवीय प्रयत्नों द्वारा नियंत्रित नहीं किया जा सकता है। स्पष्टतया मृदा उर्वरता के अध्ययन में वही कारक महत्व के हैं जिनको मानवीय प्रयासों द्वारा नियंत्रित किया जा

सकता है और किसी विशिष्ट जलवायु दशा के अंतर्गत पाई जाने वाली किसी प्रदत्त मृदा में इन कारकों का उपयुक्त और अनुकूल नियंत्रण फसलोत्पादन में अधिकतम उपज का निर्धारण करता है। मृदा में विद्यमान उर्वरता का सबसे अधिक लाभ उठाने के लिये इन कारकों का यथोचित अनुकूलन करना आवश्यक है। संक्षेप में मृदा उर्वरता किसी मृदा की ऐसी संभावित क्षमता है, जिससे फसलोत्पादन होता है, जबकि मृदा उत्पादकता–मृदा प्रबंधन का प्रभावित करने वाले कई कारणों का सामूहिक परिणाम होती है।

अध्याय – 3

मृदा प्रदूषण : अर्थ एवं परिभाषा

आधुनिक खेती में खाद्यान्न फसलों की बौनी , अर्ध–बौनी व संकर किस्मों, सघन कृषि विधियों, खादों के उपयोग में कमी, रासायनिक उर्वरकों को असंतुलित प्रयोग तथा कृषिरसायनों के अत्यधिक प्रयोग का मृदा के स्वास्थ्य पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ रहा है। मृदा में अत्यधिक एवं असंतुलित कृषिरसायनों के प्रयोग से मृदा के भौतिक, रासायनिक एवं जैविक गुणों में भी बदलाव आया है जिसका प्रभाव मृदा पर उगाई जाने वाली फसलों पर पड़ा है। निःसंदेह, उपर्युक्त कारकों से कृषि उत्पादन में वृद्धि हुई है लेकिन कृषि रसायनों का मृदा स्वास्थ्य पर प्रतिकूल प्रभाव होने से मृदा की उत्पादकता कम होती जा रही है। मृदा स्वास्थ्य से आशय मृदा की भौतिक, रासायनिक एवं जैविक दशाओं का फसलोत्पादन के अनुकूल बना रहना है। टिकाऊ एवं सतत उत्पादन के लिए आवश्यक है कि भूमि को स्वस्थ बनाए रखा जाए जिससे हम वर्तमान जनसंख्या की खाद्यान्न आपूर्ति के साथ–साथ भविष्य की संततियों की आवश्यकता का भी ध्यान रखें।

प्रायः पर्यावरण प्रदूषण की चर्चा करते समय वायु प्रदूषण तथा जल प्रदूषण पर विशेष बल दिया जाता है परंतु मृदा प्रदूषण

का प्रायः कम ही उल्लेख होता है। किंतु इसका यह अर्थ नहीं है कि मृदा कम प्रदूषित है। मृदा प्रदूषित तो है लेकिन मृदा का स्वामी किसान अभी तक उससे अनभिज्ञ है। मृदा को वह अशुद्धियों को शुद्ध बनाने वाली तथा गंध, रंग आदि को दूर करने वाली मानता है। कुछ हद तक उसकी बात सही भी है। किंतु अधिक अन्न उगाने के लिए मृदा में जिस प्रकार उर्वरकों एवं कीटनाशियों का प्रयोग हो रहा है और सिंचाई करने के लिए जल के जिन दूषित स्रोतों का उपयोग किया जा रहा है उससे मृदा प्रदूषित हुई है और भविष्य में उसके और अधिक प्रदूषित होने की संभावना है, फिर भी किसान देश की बढ़ती जनसंख्या के लिए अन्न, सब्जियाँ, फल–फूल उत्पन्न करने की होड़ में सभी तरह के जल का प्रयोग करने को बाध्य हुआ है, चाहे वह शहरों का वाहितमल हो या रेगिस्तानी क्षेत्रों का खारा जल। वास्तव में सिंचाई के साधनों की कमी के कारण तथा वाहितमल के सस्ता पड़ने के कारण किसान इसका उपयोग करता है, यदि इसका एक बार उपयोग करना होता तो बात दूसरी थी, किंतु दूषित जल से बार–बार सिंचाई करने से खेतों की मृदा में अनेक ऐसे पदार्थ संचित होते हैं तो अंततोगत्वा हानिकारक सिद्ध होते हैं।

मृदा प्रदूषण

"मृदा में विभिन्न प्रकार के लवण, खनिज तत्व, कार्बनिक पदार्थ, गैसें तथा जल एक निश्चित अनुपात में होते हैं। मृदा में उपर्युक्त पदार्थों की मात्रा और अनुपात में विभिन्न कारणों द्वारा उत्पन्न परिवर्तन मृदा प्रदूषण कहलाता है।"

मृदा निर्जीव नहीं है, उसमें असंख्य सूक्ष्मजीव निवास करते हैं जो बहुत सारे अपशिष्टों का अपघटन करके प्रदूषण की मात्रा को कम करते हैं किंतु यदि अपशिष्टों की मात्रा एक सीमा से अधिक हो जाए तो मृदा रुग्ण बन जाती है और ऐसी रुग्ण स्थिति

को मृदा प्रदूषण कहा जाता है। इस तरह मृदा के भौतिक, रासायनिक और जैविक गुणों में अवांछित परिवर्तन हो जाते हैं।

मृदा प्रदूषण दो तरह का हो सकता है– एक तो वह जिसमें मृदा से लगातार उसके अवयवों का ह्रास हो। इसे नकारात्मक/ऋणात्मक या अहेतुक/अप्रासंगिक प्रदूषण कहेंगे। शायद यह प्रदूषण अनंत काल से होता चला आ रहा है। चाहे तो इसे प्राकृतिक मृदा प्रदूषण भी कह सकते हैं। यह बहुत ही मंदगति से एवं अलक्षित रूप में होता रहता है। इधर पर्यावरणविदों ने इसकी पहचान करके इसे शून्यवत् प्रदूषण कहा है। यह कई तरह से घातक सिद्ध हुआ है– मृदाक्षरण, अम्लीयता, लवणीयता, आदि के रूप में। यह पर्वतों, मैदानों, घाटियों, खेतों में तीव्र या मंद गति से घटित होता रहता है। इससे होने वाली क्षति, इसके अवयव उनका मूल्य आदि सभी कुछ ज्ञात किए जा चुके हैं। यह जलवायु तथा भौगोलिक स्थिति के अनुसार घटित होता है। इस पर एक सीमा तक ही विजय पाना संभव है। उदाहरणार्थ– मृदा संरक्षण की विधियां अपनाकर इसे न्यूनतम किया जा सकता है मृदा प्रदूषण का दूसरा प्रकार वह है जिसकी नित्य चर्चा चलती है, यह सहेतुक या प्रासंगिक है। मुख्यतः कृषि तथा उद्योग इसके लिए दोषी है, किंतु वास्तव में बढ़ती आबादी और भूमि पर अधिक दबाव के कारण ही यह सब हो रहा है।

यह सबको अच्छा लगता है कि कृषि से अधिक अन्न उपजे या खेत सोना उगले, क्योंकि इस तरह खाद्य समस्या का समाधान होता है। किंतु इस तरह मृदा पर क्या बीतती है? शायद इसे पृथ्वीपुत्र किसान भी नहीं जानता। यदि वह जान जाए तो शायद कृषिजन्य प्रदूषण काफी कम हो जाए। स्मरण रहे, यदि मृदा प्रदूषित है जो जल और वायु में भी प्रदूषण होगा। क्या गोबर

के गड्ढे, सनई आदि सड़ाए जाने वाले स्थान या कूड़े–करकट के स्थल बदबू रहित हो सकेंगे? यह तो वायु प्रदूषण को जन्म देना है। धरती वायु को प्रदूषित कर सकती है तो क्या वायु पृथ्वी को नहीं प्रदूषित कर सकती है? इसी तरह यदि जल, मृदा को प्रदूषित कर सकता है तो मृदा भी जल को प्रदूषित कर सकती है।

इसी तरह विभिन्न उद्योग भी मृदा प्रदूषण को बढ़ाने वाले हैं। आज विभिन्न उद्योगों में प्रयुक्त ऊर्जा स्रोतों के उपभोग के कारण जिस तरह वायु प्रदूषण का जन्म होता है शायद उस ओर लोगों का ध्यान अधिक है, किंतु ये उद्योग विशेषकर, रासायनिक उद्योग जितना अपशिष्ट निकालते हैं इसका निपटान भूमि में या नदियों/समुद्रों में होता है। चोरी छिपे हो या खुले रूप से, अपशिष्टों की कब्रस्थली मृदा ही है। भला ऐसा कौन सा उद्योग होगा जिससे दूषित जल न निकलता हो, जिससे व्यक्त ठोस पदार्थ या कूड़ा–कचरा/मलबा न निकलता हो? उद्योगों के फलस्वरूप आसपास के खेतों में न जाने कितनी मात्रा में भारी धातुएं मिट्टी में प्रवेश पा चुकी हैं और यदि स्थिति नहीं सुधरी तो प्रवेश पाती रहेंगी। वस्तुतः मृदा का धात्विक प्रदूषण सबसे घातक है। जब कोई पशु उनमें उगी वनस्पति पर मुँह मारेगा तो धराशायी हो जाएगा। यदि किसान बीज बोएगा तो अंकुर ही नहीं निकलेंगे।

हमारे देश में मृदा प्रदूषण का एक कारण इसका कुप्रबंधन भी है। एक अनुमान के अनुसार इसी कुप्रबंधन के कारण हमारे देश की कुल धरती के लगभग 53 प्रतिशत तथा खेती की जा रही है कुल 14 करोड़ हेक्टेयर भूमि के लगभग 60 प्रतिशत भाग में भूमि संरक्षण की नितांत आवश्यकता है। पर्यावरण विभाग के अनुमान

के अनुसार प्रति वर्ष 6 अरब टन मृदा बहकर समुद्र में चली जाती है। यह मृदा अपने साथ 53 लाख 70 हजार टन नाइट्रोजन, फास्फोरस और पोटैशियम जैसे मुख्य पोषक तत्व भी बहा ले जाती है।

मृदा का प्रदूषण कई प्रकार से मृदा में बाह्य वस्तुओं के आकर मिलने और मिल करके प्राकृतिक संतुलन को बिगाड़ने अथवा मृदा में से किन्हीं वस्तुओं के निकल जाने से संभव है। मृदा मनुष्य तथा अन्य जीवों द्वारा उत्सर्जित अपशिष्ट पदार्थो, घरेलू तथा औद्योगिक अपशिष्टों की प्रतिग्राहिका की तरह है। चाहे वायु प्रदूषण हो या जल प्रदूषण, इन सबमें मृदा भी सहभागिनी है इसलिये मृदा में जल या वायु की अपेक्षा प्रदूषण की संभावना अधिक है। कोई भी पदार्थ जो मृदा में मिलकर उसकी उत्पादकता पर विपरीत प्रभाव डाले, वह मृदा प्रदूषक है। इन प्रदूषकों के कारण मृदा की जिस तरह सामन्य से भिन्न स्थिति हो जाती है, वह मृदा प्रदूषण कहलाती है और मृदा स्वयं प्रदूषित बन जाती है। प्रदूषित मृदा का अर्थ है ऐसी मृदा जो किसी भी प्रदूषण की चपेट में आकर अपनी सहज पूर्व स्थिति से भिन्न बन चुकी हो, या बन रही हो।

विभिन्न कारणों से मृदा की उत्पादकता में गिरावट आ रही है। इनमें से मुख्य हैं अधिक मात्रा में लवणों का जमाव, औद्योगिक/खनन अपशिष्टों को जलस्रोतों में छोड़ना और बाद में इन्हीं से सिंचाई करना, मृदा अपरदन इत्यादि। एक अनुमान के अनुसार खनन के कारण प्रति वर्ष लगभग 1400 हेक्टेयर भूमि का नुकसान होता है, जबकि इस समय अनुमानतः 500 हेक्टेयर भूमि प्रति वर्ष बेकार होती है। इसके अलावा लगभग 8000 हेक्टेयर उत्पादक प्रकार की तथा वन वाली भूमि बीहड़ों में बदल जाने के

कारण बेकार हो जाती है। इस तरह कटाव का शिकार होने वाली भूमि में 53.7 लाख से 84 लाख टन तक प्रमुख पोषक तत्वों की हानि हो जाती है। सभी प्रकार की भूमियों में कुल मिलाकर प्रति वर्ष 3 करोड़ से 5 करोड़ टन मृदा का क्षरण होता है।

अनुपचारित वाहितमल, उद्योगों से निकले अपशिष्ट शहरों के अपशिष्ट ठोस पदार्थों (कूड़ा–करकट) को नदियों, झीलों तथा अन्य जलाशयों में फेंकने से अच्छी उत्पादक भूमि की उर्वरता भी दुष्प्रभावित हो रही है। एक अध्ययन के अनुसार देश के प्रथम श्रेणी के 142 नगरों में से 44 शहरों में गंदा पानी नदियों व नालों में, 42 में कृषि भूमि पर तथा अन्य 32 नगरों में कृषि वाली शहरी भूमि व नदियों दोनों में छोड़ा जाता है। शेष 24 नगरों का गंदा पानी समुद्र में छोड़ा जाता है। फलस्वरूप जलस्रोत प्रभावित तो होते ही हैं साथ ही ऐसे जल से सिंचित मृदा भी प्रदूषित होती है।

प्रति इकाई क्षेत्र से अधिक से अधिक उत्पादन लेने के इरादे से हम सघन खेती के तरीकों द्वारा (अधिक रासायनिक उर्वरकों तथा कीटनाशी रसायनों के इस्तेमाल से) भी मिट्टी को प्रदूषित कर रहे हैं। मिट्टी के भौतिक, रासायनिक तथा जैविक गुणों पर प्रतिकूल असर पड़ रहा है।

देश के शुष्क और अर्ध–शुष्क क्षेत्रों में फसलों की पैदावार घटने का सबसे बड़ा कारण मिट्टी में लवणीयता अथवा क्षारीयता की समस्या है। कुल मिलाकर लगभग 70 लाख हेक्टेयर भूमि में यह समस्या है। जैसे–जैसे सिंचाई के साधन बढ़ते जा रहे हैं वैसे–वैसे यह समस्या भी बढ़ती जा रही है। इसका कारण नहरी पानी में सिंचाई के तरीकों का गलत प्रयोग होना है।

प्रदूषण भूमि, जल और वायु की स्वाभाविक स्थिति को प्रभावित करता है। किसी भी वस्तु की अधिक मात्रा वायुमंडल को

प्रदूषित कर सकती है। वायु, जल, मृदा, जंतु तथा वनस्पतियाँ सभी हमारे पर्यावरण के अभिन्न अंग हैं। यद्यपि जल तथा वायु प्रदूषण के परिणाम स्पष्ट रूप से दिखाई देते हैं किंतु मृदा प्रदूषण के परिणाम दूरगामी होने पर भी स्पष्ट नहीं दिखाई देते। कृषि का आधार भूमि है। प्रत्येक जीवधारी का प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से संबंध मृदा से है। मृदा मानव तथा अन्य जीवों द्वारा उत्सर्जित विभिन्न व्यर्थ पदार्थों के प्रतिग्राहक की तरह है।

सारणी–3.1

विभिन्न कारणों से होने वाले भूमि कटाव का क्षेत्रफल

क्षेत्र	मिलियन हेक्टेयर
कुल भौगोलिक क्षेत्र	329.00
क्षेत्र, जिसमें जल और वायु क्षरण होता है	150.00
क्षेत्र, जिसमें वायु क्षरण अथवा सूखापन है	38.74
रेत के टीलों से प्रभावित क्षेत्र	7.00
क्षेत्र, जिनका विशेष समस्याओं के कारण अपघटन हुआ	25.00
जलमग्न क्षेत्र	6.00
क्षारीय मिट्टियाँ	2.50
लवणीय मिट्टियाँ, जिसमें तटीय बलुई क्षेत्र आते हैं	5.50

घाटियाँ और नदियाँ	3.97
झूम खेती वाले क्षेत्र	4.36
छोटी नदियाँ और जलधारा	2.73

नगरीय क्षेत्रों में मृदा प्रदूषण का एक स्रोत कूड़ा–करकट है। नगरीय क्षेत्रों में जनसंख्या असीमित वृद्धि के कारण मल–मूत्र तथा मानव द्वारा फेंके गए अपशिष्ट पदार्थ, जिसे हम कूड़ा–करकट कहते हैं, की मात्रा में दिनोदिन अत्यधिक वृद्धि होती जा रही है जिससे नगर प्रशासकों के समक्ष कूड़ा–करकट एकत्रित करवाने तथा उसे ठिकाने लगवाने की समस्या उत्पन्न हो रही है। अपशिष्ट ठोस पदार्थों से होने वाला प्रदूषण उतना ही हानिकारक है जितना किसी अन्य स्रोत से होने वाला प्रदूषण। हालांकि इन पदार्थों का सूक्ष्मजीवों द्वारा निश्चित मात्रा में विघटन होता रहता है किंतु जब कूड़ा–करकट तथा मल इत्यादि अत्यधिक मात्रा में एकत्र हो जाते हैं तो फिर उनका विघटन संभव नहीं हो पाता है। इस प्रकार प्रदूषण की स्थिति उत्पन्न हो जाती है।

अध्याय – 4

मृदा प्रदूषण के स्रोत

मृदा प्रदूषण के स्रोतों को दो प्रमुख भागों (अ) कृषीय स्रोत (ब) अकृषीय स्रोत में विभाजित किया जा सकता है–

(अ) कृषीय स्रोत

i. रासायनिक उर्वरकों का अधिक व लगातार प्रयोग
ii. पीड़कनाशी रसायनों का अधिक प्रयोग
iii. प्रदूषित जल द्वारा निरंतर सिंचाई
iv. कृषि से संबंधित कुछ दोषपूर्ण क्रियाएँ
v. कृषि से संबंधित अपशिष्ट

(ब) अकृषीय स्रोत

अकृषीय स्रोतों द्वारा मृदा के प्रदूषित होने के मुख्य कारण शहरीकरण, औद्योगीकरण, बढ़ती जनसंख्या, प्रति व्यक्ति अधिक अपशिष्ट का उत्पादन, आधुनिकीकरण, रहन–सहन के तरीकों में बदलाव आदि हैं।

मृदा प्रदूषण साधारणतया विभिन्न कृषि कार्यों, वाहितमल और आपंक (स्लज) के गलत निस्तारण, अस्वच्छ रहन–सहन आदि का तो परिणाम है ही, साथ ही साथ यह वातावरण में उपस्थित वायु और जल प्रदूषण से भी प्रभावित होता है।

वे पदार्थ जो मृदा में काफी लंबे समय तक अवशेष रूप में बने रहते हैं और विषैली सांद्रता के रूप में एकत्रित रहकर मृदा के भौतिक तथा रासायनिक गुणों और उसमें उगाए जाने वाले पौधों के अंकुरण, वृद्धि को प्रभावित करते हैं, मृदा प्रदूषण के स्रोत हो सकते हैं। मृदा प्रदूषण के संभावित स्रोतों को निम्नलिखित शीर्षकों में भी रखा जा सकता है:–

i. औद्योगिक अपशिष्ट।

ii. अकार्बनिक विषैले यौगिक।

iii. कार्बनिक अनुपयोगी पदार्थ।

iv. रेडियोसक्रिय अपशिष्ट पदार्थ।

कृषीय स्रोत :

i. रासायनिक उर्वरकों का अधिक प्रयोग

मृदा में पोषक तत्वों की अन्य स्रोतों द्वारा पूरा करने के आवश्यकता सदियों से महसूस की जाती रही है। उदाहरणार्थ, पशुजनित खादों को पादप पोषक तत्वों के स्रोत के रूप में बहुत पहले से जाना जाता रहा है। परंतु जनसंख्या में वृद्धि एवं तदनुसार खाद्यान्नों की माँग में वृद्धि के कारण पादप पोषक तत्वों के अन्य स्रोत भी आवश्यक हो गए। मृदा से पौधों के पोषक तत्वों की आपूर्ति उनकी मांग की तुलना में कम होने के कारण शेष माँग को उर्वरक द्वारा किया जाता है।

सभी मृदाएं एक–सी नहीं है, कुछ मृदाएं पौधों की वृद्धि के लिए आवश्यक पोषक तत्वों की प्रचुरता वाली चट्टानों एवं खनिजों से विकसित हुई हैं। परिणामस्वरूप, सभी मृदाओं में उर्वरकों या अन्य पोषक तत्वों की आवश्यकता होती है ताकि भूमि से फसल द्वारा लिये गए पोषक तत्वों की पूर्ति हो सके।

नाइट्रोजन तथा फास्फोरस ऐसे तत्व हैं जो बहुधा पर्यावरणीय समस्याओं से संबंधित हैं। जब यह नाइट्रेट के रूप में पानी में

पहुँचता है और इसका सांद्रण अधिक हुआ तो मानव स्वास्थ्य के लिए हानिकारक हो जाता है। फास्फोरस झीलों एवं नदियों में शैवाल वृद्धि को प्रोत्साहित करता है जिससे पर्यावरण प्रदूषित हो जाता है, पर्यावरण में किसी भी प्रकार के प्रदूषण से पोटैशियम का कोई भी संबंध नहीं है।

नाइट्रेट अत्यधिक विलेय होता है। यह मृदा कणों से अभिक्रिया नहीं करता, अतः नाइट्रेट आसानी से मृदाओं से होकर नीचे संचालित हो सकता है। इसमें संचलन की गति का सीधा संबंध जल संचलन की गति एवं मात्रा से है। कितनी तीव्रता से पानी मृदाओं से होकर संचालित हो सकता है, यह पूर्णतया मृदा गठन से प्रभावित होता है। पानी के साथ नाइट्रेट का संचलन नाइट्रोजन प्रयोग के समय के साथ बँधा हुआ है। बुवाई–रोपाई के पूर्व नाइट्रोजन देने पर निक्षालन द्वारा नाइट्रेट की क्षति अपेक्षाकृत अधिक हो सकती है, क्योंकि पौधों द्वारा नाइट्रेट प्रयोग प्रारंभ होने से पहले ही यह मृदा में उपस्थित हो जाते हैं।

i. पीड़कनाशी रसायनों का अधिक प्रयोग

विगत कई दशकों से खेती में पीड़कनाशियों यथा– कीटनाशी, शाकनाशी, खरपतवारनाशी, पादप वृद्धि नियामकों इत्यादि का अत्यधिक एवं असंतुलित प्रयोग किया जा रहा है जिसके फलस्वरूप मृदा स्वास्थ्य पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ रहा है। इन रसायनों के प्रयोग से खरपतवार कीट व रोग तो नियंत्रित हो जाते हैं, परंतु इन विषैले रसायनों का मृदा के भौतिक, रासायनिक एवं जैविक गुणों पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। किसानों को इन रसायनों के प्रयोग की सही जानकारी न होने के कारण आज उर्वर भूमि बंजर भूमि में बदलती जा रही है। साथ ही मिलावटी व नकली कृषि रसायनों के प्रयोग से भी मृदा का स्वास्थ्य बिगड़ता जा रहा है।

यद्यपि कृषि में प्रयुक्त किए जाने वाले विभिन्न कीटनाशी, शाकनाशी, कवकनाशी आदि रसायनों का भूमि में अपघटन होता रहता है, और इनसे तरह–तरह के कम विषैले या विष रहित अवशेष पदार्थ बनते रहते हैं, परंतु इनमें से कुछ रसायन दीर्घ स्थायी होते हैं और इनके अवशेष मृदा जैवमंडल को बहुत समय तक प्रदूषित किए रहते हैं। इन रसायनों के अवशेष पदार्थ मिट्टी में पाये जाने वाले सूक्ष्मजीवों को (जो कि मिट्टी की उर्वरता के लिये उत्तरदायी होते हैं) को प्रभावित करते हैं और उनकी कार्यशीलता को कम कर देते हैं। ये रसायन तब तक मिट्टी के जैवमंडल को असंतुलित किए रहते हैं, जब तक कि इनका पूर्ण अपघटन नहीं हो जाता। वाष्पीकरण, वाष्पोत्सर्जन, फोटोलिसिस, पौधों की मेटाबोलिक क्रियाओं, निक्षालन, सूक्ष्मजीवों द्वारा विच्छेदन जल अपघटन तथा अन्य रासायनिक क्रियाओं आदि के अतिरिक्त मृदा में कणों तथा कार्बनिक पदार्थ द्वारा इन विषाक्त रसायनों का अधिशोषण हो जाता है। कुछ रसायन तथा उनके अवशिष्ट इतने स्थायी देखे गये हैं कि एक बार उपयोग करने के उपरांत उनके अवशेष पदार्थ वर्षों तक मिट्टी में मौजूद रहते हैं और मृदा–जीवों के लिए अत्यंत विषाक्त बने रहते हैं। मिट्टी में ऑर्गेनोक्लोरीन वर्ग के कीटनाशियों का स्थायित्वकाल काफी लंबा होता है इनमें से डी.डी.टी. तो काफी बदनाम हो चुका है। इसके अवशेष कई वर्षों तक मृदा में विषाक्त रूप में पड़े रहते हैं। इसके इसी गुण के कारण विकसित देशों में इसके उपयोग पर प्रतिबंध लगा दिया है किंतु विकासशील देशों में इसका प्रयोग जारी है।

मृदा में ऑर्गेनोक्लोरीन कीटनाशियों के स्थायित्व पर बहुत शोधकार्य हुआ है। इनके दीर्घस्थायी होने के कारण ही ऑर्गेनोफॉस्फेट, संश्लेषित पायरेथ्राइड आदि अतिविषाक्त, अल्पस्थायी रसायनों

की खोज हुई जो ऑर्गेनोक्लोरीन रसायनों की अपेक्षा अल्पस्थायी तो हैं पर इनके तीक्ष्ण विष मृदा जीवों एवं जीवाणुओं के लिए और भी हानिकारक है और पर्यावरण को सूंदषित करते हैं।

दीर्घस्थायी रसायन तब तक मृदा जैवमंडल को असंतुलित किए रहते हैं जब तक ये पूर्ण रूप से नष्ट नहीं हो जाते। मृदा के कणों तथा कार्बनिक कोलॉइडों द्वारा इन विषाक्त जीवनाशी रसायनों का अधिशोषण उस रसायन की उपलब्धि उसकी जैविक क्रिया, जीवाणु के प्रति सहिष्णुता और जीवाणु द्वारा उपापचयी क्रिया आदि को तो प्रभावित करती ही है साथ ही मृदा में कार्बनिक पदार्थों का अपक्षरण, नाइट्रोजन स्थिरीकरण, फॉस्फोरस तथा सल्फर के विलयनीकरण आदि से संबंधित महत्वपूर्ण क्रियाएं भी इससे प्रभावित होती हैं।

चूंकि किसी खेत की मृदा में प्रयुक्त कीटनाशी रसायन प्रदूषण का मुख्य कारक बनता है, अतः इन रसायनों के स्थानांतरण का अध्ययन उनके दीर्घ स्थायित्व की जाँच के लिए आवश्यक है।

कृषि में प्रयुक्त विभिन्न कीटनाशी, शाकनाशी तथा कवकनाशी मृदा में मिलकर विघटित होते हैं तो तरह–तरह के विषैले या विषरहित अवशेष पदार्थ बनते रहते हैं परंतु इनमें से कुछ रसायन दीर्घकाल तक मृदा में अपरिवर्तित रह जाते हैं। इससे न केवल मृदा अपितु मृदा जैवमंडल भी प्रदूषित होता है।

मृदा में ऑर्गेनोक्लोरीन वर्ग के कीटनाशियों का स्थायित्व काल काफी लंबा है। इनमें से डी.डी.टी. के अवशेष सर्वाधिक काल तक (2 से 5 वर्ष तक) विषाक्त रूप में रहते हैं।

सारणी–4.1
कुछ प्रमुख पीड़कनाशियों (पेस्टीसाइड) की दीर्घ स्थायित्व अवधि

पीड़कनाशी (पेस्टीसाइड)		दीर्घ स्थायित्व अवधि
1.	आर्सेनिक	अनिश्चित
2.	क्लोरीनित हाइड्रोकार्बन कीटनाशी (जैसे डी.डी.टी., क्लोरडेन, एल्ड्रिन आदि)	2 से 5 वर्ष
3.	ट्रायाजीन शाकनाशी (जैसे, अट्राजीन, सिमेजीन आदि)	1 से 2 वर्ष
4.	बेंजोइॅक अम्ल शाकनाशी (जैसे, एमीबेन, डाइकांबा)	2 से 12 महीने
5.	यूरिया शाकनाशी (जैसे, मोन्यूरॉन, डाइयूरान)	2 से 10 महीने
6.	फिनॉक्सी शाकनाशी (जैसे, 2, 4–डी–2, 4, 5–टी)	1 से 5 महीने
7.	आर्गेनोफॉस्फेट कीटनाशी (जैसे मैलाथियॉन आदि)	1 से 2 सप्ताह
8.	कार्बामेट कीटनाशी	1 से 8 सप्ताह
9.	कार्बामेट शाकनाशी	2 से 8 सप्ताह

iii. प्रदूषित जल द्वारा निरंतर सिंचाई

खेती में सिंचाई जल एक बहुत महँगा साधन है जिससे लागत उपज अनुपात असंतुलित होता जा रहा है। कुछ क्षेत्रों का पानी देखने व पीने में सही लगता है परंतु वास्तविकता में मिट्टी व फसलों की सेहत के लिए हानिकारक हो सकता है। ऐसे पानी को फसलोत्पादन में लंबे समय तक लगातार प्रयोग करते रहने के कारण कुप्रभाव शुरू हो जाता है तथा बाद में भूमि अनुपजाऊ हो जाती है। खारे या नमकीन पानी से सिंचाई करने पर मृदा के भौतिक, रासायनिक व जैविक गुणों पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। इस प्रकार खारे व निम्न गुणवत्तायुक्त पानी का प्रयोग करते रहने से खेती योग्य भूमि की उर्वरा शक्ति निरंतर घटती जा रही है। लंबे समय तक लवणीय जल से सिंचाई करने पर बीजों के अंकुरण में कमी आ जाती है। पौधों की शुरूआती अवस्था में बढ़वार कम होती है और पौधे छोटे रह जाते हैं। अतः निम्न गुणवत्ता वाला जल मृदा–स्वास्थ्य के लिए हानिकारक है।

सिंचित क्षेत्रों में सतही व भूमिगत जल के अनुचित व अत्यधिक दोहन के कारण जल स्तर निरंतर नीचे गिरता जा रहा है जिसका भूमि के उपजाऊपन व फसलों की उत्पादकता पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ रहा है। फसलों में अंधाधुंध सिंचाई व सिंचाई संख्या बढ़ाने से न केवल जल का अपव्यय होता है बल्कि मृदा–स्वास्थ्य भी खराब होता है। वर्तमान परिवेश में सघन फसल प्रणाली व मशीनीकरण की वजह से भू–जल पर दबाव इतना बढ़ गया है कि भूमिगत जल स्तर दिनों दिन नीचे गिरता जा रहा है। खेती में पारंपरिक सिंचाई प्रणाली उपयोग में लाई जा रही है जिसमें खेतों में सिंचाई जल लबालब भर दिया जाता है। इससे काफी समय पानी इधर–उधर बहकर या जमीन में रिसकर नष्ट हो जाता है।

हमारा देश कृषि प्रधान देश है। अतः यह स्वाभाविक ही है कि हम कृषि उत्पादन में वृद्धि के लिए सिंचाई जल की गुणवत्ता एवं जल–प्रबंधन की आवश्यकता को प्राथमिकता के आधार पर स्वीकार करें। यद्यपि प्रमुख सिंचाई परियोजनाओं के फलस्वरूप कृषि उत्पादन में पर्याप्त वृद्धि हुई है, किंतु अधिक सिंचाई तथा जल वितरण की अपर्याप्त व्यवस्था के कारण जलाक्रांति, लवणता तथा बहुमूल्य जैव–संसाधनों के नष्ट होने की समस्या पैदा हो गई है। इन समस्याओं से निपटने के लिए एक प्रभावशाली कार्यनीति की आवश्यकता है।

प्रायः सभी प्रकार के सिंचाई जल में घुलनशील पदार्थों की कुछ न कुछ मात्रा अवश्य रहती है। जल में घुले पदार्थों की सांद्रता, सिंचाई जल की गुणवत्ता को निर्धारित करती है। कुछ फसलें एवं भूमियाँ जल में घुले नमक एवं पदार्थों के प्रभाव को सहन कर लेती हैं, जबकि दूसरी फसलों पर हानिकारक प्रभाव पड़ता है।

कृषि उत्पादन और सिंचाई:

कृषि उत्पादन के प्रमुख आदान के रूप में पानी की व्यवस्थित आपूर्ति में सिंचाई का हिस्सा दो तिहाई से भी अधिक है, किंतु खाद्यान्न की पैदावार में आत्म–निर्भरता बनाए रखने के लिए सिंचाई क्षमता में अभी और वृद्धि करने की आवश्यकता है। इसके लिए दो सूत्री कार्यनीति अपनाए जाने की आवश्यकता है। पहली यह कि सिंचाई क्षेत्र की प्रमुख कमियों को दूर करने के लिए सुधारात्मक उपायों को लागू करना और दूसरी, कार्यनीति के अंतर्गत उपलब्ध जल संसाधनों की समूची क्षमता का उपयोग करने के उद्देश्य से उनका तेजी से विकास किरते रहना।

जल–प्रबंधन कृषि कार्यों हेतु पानी के नियोजित–उपयोग करने की कला है। इसके अंतर्गत सिंचाई (पौधों को प्राप्य जल

की पूर्ति हेतु पानी देना) तथा जल–निकास (फालतू पानी को खेत से बाहर निकालना) शामिल हैं। पौधों के लिए एक निश्चित मात्रा में नमी की आवश्यकता होती है। जल की आपूर्ति जब प्राकृतिक संसाधनों द्वारा नहीं हो पाती हैं, तो आपूर्ति कृत्रिम रूप से करनी पड़ती है, जिसे हम सिंचाई कहते हैं। फसल के लिए सही समय पर, सही मात्रा में एवं सही तरीके से जल का प्रबंधन किया जाए।

जिस प्रकार जल की कमी से पौधों की उपज प्रभावित होती है उसी प्रकार जल की अधिकता में भी पौधों की वृद्धि रुक जाती है और उत्पादन क्षमता कम हो जाती है, इसलिए उपयुक्त जल प्रबंधन के लिए सिंचाई एवं जल निकास एक–दूसरे के पूरक है। सिंचाई प्रबंधन के अंतर्गत फसलों की सामयिक एवं समुचित जल–मांग की आवश्यकता को पूरा किया जाता है जबकि जल निकास में आवश्यकता से अधिक पानी को क्षेत्र से बाहर निकालने की योजना बनाई जाती है।

सिंचाई–जल की गुणवत्ता में सुधार के उपाय

किसानों के लिए सिंचाई जल का चुनाव करना कठिन कार्य है, क्योंकि उपलब्ध जल से सिंचाई करना एक विवशता होती है। इस प्रकार दूषित जल से सिंचाई करने के परिणामस्वरूप मृदा की अवस्था बिगड़ने के साथ–साथ उत्पादन में भी कमी आ जाती है। इसे निम्न उपायों द्वारा कम किया जा सकता है।

1. सिंचाई–जल में चूना मिलाकर।
2. खराब जल के साथ अच्छे पानी को मिलाकर सिंचाई करने से दूषित जल के प्रभाव को घटाया जा सकता है।
3. गंधक के अम्ल तथा जिप्सम को सिंचाई जल में मिलाकर।
4. जीवांश पदार्थ युक्त जल को सिंचाई जल में मिलाकर।

5. सिंचाई जल से हानिकारक लवणों को अलग करके सिंचाई करने से।

यह विधि अत्यधिक खर्चीली होने के कारण व्यावहारिक नहीं है।

सिंचाई जल प्रबंधन में ध्यान देने योग्य बातें:

1. जलवायु तथा फसल की जल–माँग के अनुसार ही सिंचाई करना चाहिए।

2. सिंचाई जल की उपलब्धता के अनुरूप फसलों का चुनाव करना चाहिए जिससे पानी का दक्षतापूर्वक उपयोग किया जा सके।

3. सिंचाई हेतु उपलब्ध जल को अधिक से अधिक क्षेत्र में उपयोग में लाया जाना चाहिए।

4. चयनित किस्मों में उनकी क्रांतिक अवस्थाओं पर सिंचाई करना चाहिए।

5. फसलों को खर–पतवार रहित रखना चाहिए, जिससे उपलब्ध जल का अधिक उपयोग फसलों द्वारा हो सके।

6. उपलब्ध जल में फसल उत्पादन में अधिक लाभ हेतु निर्धारित मात्रा में संतुलित उर्वरक का उपयोग किया जाना चाहिए।

7. जल स्रोत से खेत तक जल ले जाते समय नाली की सतत निगरानी रखी जानी चाहिए।

8. सिंचाई द्वारा दिए गए पानी को फसलों की जड़ क्षेत्र में अधिकतम समय तक मौजूद रखने के लिए नमी संरक्षण के उपायों को अपनाना चाहिए।

9. सिंचाई की नई विधियों (बौछारी, टपकन या बूंद–बूंद सिंचाई पद्धति) को अपनाकर सिंचाई की दक्षता बढ़ाई जा सकती है।

10. जल निकास का समुचित प्रबंधन करके किसी भी सिंचाई परियोजना से वांछित लाभ प्राप्त किया जा सकता है।

प्रति इकाई जल से अधिकतम पैदावार प्राप्त करने के उद्देश्य से सिंचाई करते समय निम्नलिखित बातों पर ध्यान देना आवश्यक है:

1. सिंचाई कब की जाए।

2. सिंचाई कैसे की जाए 3. सिंचाई जल किस मात्रा में प्रयोग किया जाए 4. किस प्रकार के जल से की जाए।

व्यावहारिक दृष्टि से सिंचाई करने के समय का ज्ञान निम्नलिखित विधियों को अपनाकर किया जा सकता है:–

i. पौधे के बाह्य गुणों को देखकर।

ii. मृदा की दशा एवं बाह्य गुणों को देखकर।

iii. भूमि में प्राप्त जल की मात्रा एवं आर्द्रता प्रतिबल के आधार पर।

iv. जलवायु संबंधी आँकड़ों के आधार पर सिंचाई का निर्धारण।

v. पौधों की वृद्धि की क्रांतिक अवस्था के आधार पर।

vi. सूचक पौधों की सहायता से।

vii. पौधों की पत्तियों में नमी के अंश के आधार पर।

सिंचाई की सबसे उपयुक्त विधि वह है जिसमें जल का समान वितरण होने के साथ ही पानी का कम से कम नुकसान हो तथा कम से कम पानी से अधिक क्षेत्र सींचा जा सके। सिंचाई जल के समुचित उपयोग के लिए यह आवश्यक है कि सदैव पानी की वांछनीय मात्रा का प्रयोग किया जाए।

फसल के लिए प्रयुक्त सिंचाई जल की संपूर्ण मात्रा (सिंचाई संख्या X प्रति सिंचाई प्रयुक्त जल की मात्रा) को जल डेल्टा के नाम से पुकारते हैं। ऐसा पाया गया है कि पानी की एक ही मात्रा का प्रयोग करना थोड़ी मात्रा से कई बार सिंचाई करने की अपेक्षा

अधिक लाभदायक होता है। प्रायः सिंचाई करते समय शत–प्रतिशत जल उपयोगी नहीं हो पाता, अतएव खेत में आवश्यकता से अधिक पानी देना पड़ता है। इसे समग्र जल कहते हैं। इसे निम्न सूत्र से निकालते हैं:

$$\text{समग्र जल की मात्रा} = \frac{\text{सिंचाई के लिए आवश्यक जलापूर्ति की मात्रा}}{\text{सिंचाई प्रणाली की क्षमता}}$$

दो सिंचाई के बीच के अंतराल अवधि को सिंचाई की बारंबारता कहते हैं। विभिन्न फसलों की सिंचाई करते समय यह आवश्यक होता है, कि किसी फसल विशेष की सिंचाई निश्चित अवधि से पूर्ण कर लें, क्योंकि इससे विलंब होने पर उपज में भारी कमी की संभावना रहती है। किसी खेत में किसी फसल की अधिकतम उपयोग दर के एक सिंचाई में जितना समय लगता है, उसे सिंचाई की अवधि के नाम से पुकारते हैं।

स्मरण रहे, किसी भी फसल प्रणाली का असर अंततः जल, जमीन एवं जलवायु पर पड़ता है। अतः इन प्राकृतिक संसाधनों का संरक्षण इस प्रकार किया जाना चाहिए जिससे इनके अनुकूलतम उपयोग के साथ इनकी उपयोग दक्षता में भी वृद्धि हो। विभिन्न स्रोतों से जल संसाधनों की उपलब्धता, जल संसाधनों के विकास की स्थिति, जल का उपयोग और उसके वितरण की विधि, प्रदूषण की समस्या और उससे संबंधित सामाजिक–आर्थिक पहलुओं पर विश्वसनीय आँकड़ों का डाटाबेस तैयार करने की आवश्यकता है ताकि जल संसाधन विकास तथा प्रबंधन योजना तैयार करने हेतु ठोस आधार उपलब्ध हो सके।

इस प्रकार सार–रूप में यह कहा जा सकता है कि जल संसाधन प्रबंधन एक बहुआयामी प्रक्रिया है जिसमें बुनियादी भौतिक संरचना में रचनात्मक सुधार प्रबंधन प्रणाली और परिचालन के लिए प्रबंधन व्यवस्था अन्य उत्पादन निवेशों के साथ–साथ

कार्यों पर बहुस्रोतीय व गुणवत्ता युक्त जल की व्यवस्था तथा सामाजिक आर्थिक पहलुओं का समावेश आवश्यक है।

iv. कृषि से संबंधित कुछ दोषपूर्ण क्रियाएं

जैविक खादों का कम प्रयोग– आजकल कृषि में पशुधन की संख्या में कमी होती जा रही है। पहले खेती की डोर बैलों पर निर्भर थी। खेती का मशीनीकरण हो जाने से पूरे–पूरे गांव में बैलों की जोड़ी देखने को नहीं मिलती है, जिससे खेती में गोबर की खाद व पशुओं के मल–मूत्र का बहुत कम प्रयोग हो रहा है। परिणामस्वरूप मृदा में जीवांश पदार्थ की कमी होती जा रही है। साथ ही फसल–चक्र में दलहनी फसलों का समावेश व फसल अवशेषों का बहुत कम प्रयोग हो रहा है। बहुउद्देशीय पेड़–पौधों की पत्तियों का प्रयोग किसान खाद की अपेक्षा ईंधन के रूप में कर रहे हैं। आधुनिक खेती में जैविक खादों व रासायनिक उर्वरकों का संयोजन बिगड़ता जा रहा है। कंपोस्ट खाद व हरी खादों के स्थान पर एकल तत्व वाले उर्वरकों का प्रयोग बढ़ता जा रहा है जिसका सीधा दुष्प्रभाव मृदा स्वास्थ्य पर पड़ रहा है। इस प्रकार मृदा में जीवांश पदार्थ की कमी होने से अनेक लाभकारी जीवाणुओं की संख्या में कमी होती जा रही है। ये लाभकारी सूक्ष्मजीव मृदा में होने वाली विभिन्न अपघटन में सक्रिय रूप से भाग लेते हैं जो अंततः मृदा के लिए घातक सिद्ध हो रहा है।

पानी की अधिकता से मृदा की हानि

कुछ किसान नहरों या ट्यूबवेल का पानी अपने खेतों में सीधे खोल देते हैं, जिससे तेज बहाव के कारण मृदा के कण बह जाते हैं, इस प्रकार एक ओर उर्वर भूमि का ह्रास होता है तो दूसरी ओर कृषि उत्पादन का महत्वपूर्ण घटक सिंचाई जल बहकर नष्ट हो जाता है। किसानों की जरा सी लापरवाही से

खेतों में सैकड़ों वर्षों में जमा उपजाऊ मृदा बारिश के साथ बह जाती है।

कृषि भूमि का बिगड़ता समतल

ट्रैक्टर तथा भारी–भरकम कृषि यंत्रों से खेतों की मेंड़ें सुरक्षित नहीं रह पाती जिससे वर्षा जल का अधिकांश भाग बहकर नष्ट हो जाता है। साथ ही फसलों को दिए गए पोषक तत्वों का बड़ा हिस्सा भी वर्षा जल के साथ बहकर नष्ट हो जाता है। खेती का मशीनीकरण होने के कारण कृषि भूमि की समतलता बिगड़ती जा रही है जिसके फलस्वरूप दिए गए सिंचाई जल व पोषक तत्वों का संपूर्ण खेत में वितरण समान रूप से नहीं हो पाता है। अधिकांश किसान खेतों की समतलता के महत्व को नजरअंदाज कर देते हैं, जिससे मृदा उर्वरता व उत्पादकता संपूर्ण खेत में एकसमान नहीं रहती है। अंततः फसल की औसत पैदावार में गिरावट आ जाती है। कभी–कभी एक ही तरह के कृषि यंत्रों एवं एक ही गहराई पर बार–बार जुताई करने के कारण अधोभूमि में हल के नीचे के आवागमन में बाधा पहुँचती है। साथ ही पौधों की जड़ों का विकास भी ठीक तरह से नहीं हो पाता है।

सघन फसल प्रणाली/मृदा का अनुचित व अत्यधिक दोहन

वर्तमान में सघन फसल प्रणाली के अंतर्गत मृदा के अनुचित व अत्यधिक दोहन के कारण मृदा स्वास्थ्य बिगड़ता जा रहा है जिसका मृदा के उपजाऊपन व फसलों की पैदावार पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ रहा है। प्रत्येक फसल के बाद भूमि में पोषक तत्वों की कमी आ जाती है, जिनकी क्षतिपूर्ति करना अति आवश्यक है अन्यथा मृदा की उर्वरा शक्ति, मृदा स्वास्थ्य और उत्पादकता में कमी आ जाती है। फसलों की अधिक पैदावार देने वाली बौनी,

अर्धबौनी व संकर किस्मों की निरंतर खेती के कारण मृदा में नाइट्रोजन, फॉस्फोरस व पोटाश का अनुपात बिगड़ता जा रहा है। फसलों को विभिन्न पोषक तत्वों की अलग–अलग मात्रा में आवश्यकता होती है। किसी एक पोषक तत्व की कमी को दूसरे तत्व की आपूर्ति से पूरा नहीं किया जा सकता है। उत्तर–पश्चिम भारत में धान–गेहूं फसल–चक्र के अंतर्गत न केवल मृदा में कार्बनिक कार्बन की मात्रा कम हो जाती है बल्कि कुछ सूक्ष्म पोषक तत्वों की भी कमी होती जा रही है।

v. कृषि से संबंधित अपशिष्ट पदार्थ

खेतों में फसलों की कटाई के बाद बचे पत्ती, डंठल, पुआल, घास–फूस, बीज इत्यादि मुख्य कृषि अपशिष्ट (व्यर्थ पदार्थ) कहे जा सकते हैं। साधारणतः इनसे गंभीर प्रदूषण नहीं होता, क्योंकि पौधों के ये अवशेष मृदा में मिलकर जैविक क्रियाओं द्वारा स्वतः ही अपघटित हो जाते हैं। समस्या तो तब उत्पन्न होती है जब खेतों पर इनका अनावश्यक ढेर लग जाता है। वर्षा के जल से यह कार्बनिक मलबा सड़ने लगता है तथा प्रदूषण का कारण बनता है।

अकृषीय स्रोत

i. औद्योगिक अपशिष्ट

उन्नीसवीं सदी में आरंभ हुई औद्योगिक क्रांति बीसवीं सदी में अपने चरम पर जा पहुँची। इसके परिणामस्वरूप जहाँ मानव के जीवनस्तर में परिवर्तन आया वहीं उद्योगों के कारण होने वाले प्रदूषण ने पर्यावरण को भारी नुकसान पहुँचाया है। अतः औद्योगिक प्रदूषण का नियंत्रण वर्तमान की सबसे बड़ी आवश्यकता है। यदि हम अपनी भावी पीढ़ी को स्वच्छ और स्वस्थ पर्यावरण देना चाहते हैं तो हमें ऐसे प्रयास करने होंगे जिससे उद्योगों द्वारा फैलाये जा रहे प्रदूषण को कम से कम स्तर पर लाया जा सके।

जब अपशिष्टों को पर्यावरण में छोड़ा जाता है तो समाज को उसकी कीमत चुकानी पड़ती है, फलतः उद्योगों को चाहिए कि पर्यावरण सुरक्षा हेतु सर्वाधिक सक्षम एवं प्रभावी विधि अपनाएं।

औद्योगिक प्रदूषण की समस्याओं से न केवल संसाधनों का क्षय होता है और पर्यावरण को क्षति पहुँचती है अपितु अर्थव्यवस्था को भी नुकसान पहुँचता है। औद्योगिक प्रदूषण का जन्म तब होता है जब फैक्टरियाँ हानिकारक उपोत्पादों तथा अपशिष्टों को पर्यावरण में इतनी मात्रा में उत्सर्जित करती हैं जिसे पर्यावरण पचा नहीं सकता। तमाम अपशिष्ट मिलकर अनेक गंभीर समस्याएं उत्पन्न कर सकते हैं।

औद्योगिक प्रदूषण की समस्याएं तीन तरह की हैं और यदि हमें अपने पर्यावरण की गुणवत्ता को सुरक्षित रखना है। तो इन समस्याओं का हल आवश्यक होता है पहली समस्या फैक्टरी के भीतर ही अपशिष्ट का उत्सर्जन है जो गैसीय, तरल तथा ठोस रूप में हो सकता है। दूसरी समस्या है औद्योगिक उत्पाद का उपयोग जिसमें उत्पाद का परिवहन, भंडारण तथा वितरण सम्मिलित है और इस्तेमाल में न लाए जाने उत्पादो का निपटान अंतिम या तीसरी समस्या है। औद्योगिक प्रदूषण की तीनों समस्याओं का उचित प्रबंधन आवश्यक है। इसीलिए आजकल सारा शोधकार्य औद्योगिक अपशिष्टों को कम करने तथा उनके पुनः उपयोग किए जाने के विषय में किया जा रहा हैं।

आजकल शहरों के निकटवर्ती भू–भाग पर सब्जियों की खेती बहुतायत से की जा रही है। इन सब्जियों की फसलों की सिंचाई हेतु प्रायः शहरों की नालियों में बहने वाले गंदे जल का ही प्रयोग किया जाता है। इसके अतिरिक्त खाद के स्रोत के रूप में आपंक का उपयोग भी बहुत लंबे समय से हो रहा है। प्रयोगों

द्वारा अब यह सिद्ध हो चुका है कि इस वाहितमल एवं आपंक (स्लज) में अनेक विषैली भारी धातुएं पायी जाती हैं। भारी धातुओं के अंतर्गत वे तत्व आते हैं जिनका घनत्व 5 से अधिक होता है। मुख्य भारी धातुएं हैं– कैडमियम, क्रोमियम, कोबाल्ट, कॉपर, आयरन, मरकरी, मैंगनीज, मॉलिब्डिनम, निकैल, लेड, टिन तथा जिंक। कुछ भारी धातुएं जैसे–कॉपर, आयरन, मैंगनीज, जिंक, मॉलिब्डिनम तथा कोबाल्ट की सूक्ष्म मात्रा पौधों के लिये आवश्यक होती है। कुछ भारी धातुएं जैसे क्रोमियम निकैल तथा टिन की सूक्ष्म मात्रा जानवरों के लिए, आवश्यक होती है, किंतु कैडमियम, मरकरी तथा लैड न तो पौधों के लिये आवश्यक है और न ही जानवरों के लिये अर्थात् पर्यावरण में इनकी उपस्थिति वनस्पतियों, जीवों एवं स्वयं मनुष्य के लिये हानिकारक होती है। ये विषैली भारी धातुएं अनुमत सांद्रण सीमा से अधिक होने पर मृदा के धात्विक प्रदूषण का कारण बनती हैं।

इन धातुओं का औद्योगिक महत्व होने के नाते रोज नए–नए कारखानों की स्थापना हो रही है। फलतः प्रतिदिन अपशिष्ट के रूप में इन धातुओं का ढेर सा लग जाता है और पर्यावरण में इन धातुओं का प्रचुर अंश विष रूप में मिलता रहता है। इन अपशिष्टों के हवा, नदी–नाले तथा मिट्टी आदि में पहुँचने से जल तथा मिट्टी के धात्विक प्रदूषण की समस्या उत्पन्न हो जाती है। जल, वायु, मिट्टी ही नहीं अपितु इससे अब खाद्य सामग्री भी प्रदूषित होने लगी है।

जापान में 'मिनीमाता' नामक स्थान पर हुई एक दुर्घटना ने सारे विश्व का ध्यान धातु प्रदूषण की ओर आकर्षित किया। इस दुर्घटना में 56 लोगों की मृत्यु हुई थी और काफी लोग विकलांग हो गये थे। माताओं के गर्भ में पल रहे बच्चे भी इस दुर्घटना से

दुष्प्रभावित हुए। यह दुर्घटना एक रासायनिक कारखाने की वजह से हुई थी जो अपने अपशिष्ट पदार्थों को मिनीमाता की खाड़ी में फेंक देता था। इन पदार्थों में पारा (मरकरी) के लवण मुख्य थे। इससे खाड़ी का पानी प्रदूषित हो गया था। पारा के लवणों के कारण खाड़ी की मछलियाँ विषैली हो गईं। इनके खाने से यह विष मनुष्यों के शरीर में भी पहुँच गया था। उस समय खाड़ी के जल में पारे की मात्रा 1.6–3.6 पी.पी.बी. (अंश/बिलियन) थी जबकि सामान्य दिनों में पारे का स्तर केवल 0.1 पीपीबी (अंश/बिलियन) थी। वास्तव में अधिकांश उद्योगों (जैसे प्लास्टिक, कागज, रंग, पालिश आदि उद्योग) में पारे के कार्बनिक तथा अकार्बनिक यौगिकों का उपयोग किया जाता है। जिन्हें अंत में बेकार पानी के साथ समुद्र या नदी में प्रवाहित कर दिया जाता है। जब मछलियाँ इस जल में जाती हैं तो वे अधिक पारा युक्त चारा खाती हैं। जिस मछली में प्रति किलो भार पर 1 मि. ग्रा. से अधिक पारा रहता है वह खाने के लायक नहीं रहती।

वैज्ञानिक स्टॉक के अनुसार यदि प्रतिदिन लगातार कई सप्ताहों तक ऐसी वायु में साँस ली जाएं जिसमें प्रतिघन मीटर 0.01 मि.ग्रा. पारा हो तो सिर दर्द, थकान तथा मस्तिष्क शिथिलता का अनुभव होने लगेगा। ध्यान रहे कि प्रति सप्ताह 0.3 मि.ग्रा. से अधिक पारा ग्रहण नहीं किया जा सकता।

विकासशील देशों में प्रतिवर्ष बीजों को उपचारित करने के लिये हजारों टन पारा जीवनाशियों का प्रयोग होता है जिसके कारण असावधान कृषकों की मृत्यु होती रहती है। कभी–कभी उपचारित बीजों को चिड़ियाँ चुग लेती हैं तो वे भी बड़ी संख्या में मरने लगती हैं।

कैडमियम भी एक विषैली भारी धातु है। यह खनन, धातुकर्म, रसायन उद्योग, सुपरफॉस्फेट उर्वरक तथा कैडमियम युक्त जीवनाशी रसायनों के माध्यम से पर्यावरण में प्रवेश पाता है। चाहे कपड़ा धोने की मशीन हो या कि कुकर अथवा फ्रिज हो, सभी में कैडमियम प्लेटिंग रहती है अनुमान है कि मनुष्य के आहार के साथ प्रतिदिन 40 माइक्रोग्राम कैडमियम प्रविष्ट होता है। जापान में 'इताइ–इताइ' रोग कैडमियम की ही विषाक्तता से होता है। हमारे देश में ही कैडमियम बैटरी बनाने वाले उद्योगों में प्रदूषण के कारण 4000 लोगों की मृत्यु हो चुकी है।

मनुष्य में कैडमियम की कुल मात्रा 30 मि.ग्रा. होती है जिसका 1/2 अंश वृक्कों में और 1/6 अंश यकृत में रहता है। प्रदूषण की स्थिति में यकृत में कैडमियम की मात्रा बढ़ती जाती है किंतु वृक्कों में इसकी मात्रा आयु के अनुसार बढ़ती है इसकी विषाक्तता से पथरी पड़ जाती है इसका विषैला प्रभाव एंजाइम के सल्फहिड्रिन समूह पर पड़ता है। सिगरेट पीने वालों के शरीर में कैडमियम की अधिक मात्रा पाई जाती है। इसकी विषाक्तता से तनाव तथा हृदय रोग बढ़ते हैं।

लैड या सीमा एव संचयी विष है। दैनिक मात्रा थोड़ी होने पर भी लंबे समय में सीसे का काफ़ी संचय हो जाता है। यह पात्रों, मिट्टी और पानी के पाइपों से पर्यावरण में आता है। अनुमान है कि प्रतिदिन भोजन के द्वारा मनुष्य को 0.2–0.25 मि.ग्रा. सीसा मिलता है। जल के माध्यम से प्रतिलीटर 0.1 मि.ग्रा. सीसा शरीर के भीतर पहुँचता है। मृदु तथा अम्लीय जल में यह मात्रा अधिक हो सकती हैं।

शहरों में वाहनों के पेट्रोल से निकला सीसा वायुमंडल में व्याप्त रहता है। इंजनों की कार्यक्षमता बढ़ाने के लिये पेट्रोल में

लैड का यौगिक (टेट्रा एथिल लैड) मिला दिया जाता हैं। यह सीसा श्वॉस द्वारा शरीर में प्रविष्ट होता रहता है। सीसे की विषाक्तता से उल्टी, अरक्तता, गठिया आदि रोग हो जाते हैं। प्राचीन रोम के वासी सीसा से कलई किए गए बर्तनों का अधिक उपयोग करते थे इसके कारण उनके शरीर में सीसे की इतनी अधिक विषाक्तता हो गई थी कि कम आयु में ही उनकी मृत्यु हो जाती थी।

ऐलुमिनियम का सर्वाधिक प्रयोग नित्य प्रति व्यवहार में आने वाले बर्तनों के बनाने में होता है। यदि पीने के पानी में फ्लुओराइड मिला हो तो ऐसे बर्तनों में से पर्याप्त ऐलुमिनियम शरीर के भीतर प्रविष्ट हो सकता है। इसकी अधिकता से मस्तिष्क कोशिकाओं को क्षति पहुँचती है।

क्रोमियम, निकैल धातुओं से संबंधित कारखानों में काम करने वाले मनुष्यों में चर्म तथा श्वास नली के कैंसर होते देखे गये हैं।

आर्सेनिक एक संचयी तथा जीवद्रव्यीय (प्रोटोप्लाज्मिक) विष है जो एंजाइमों के सल्फहिड्रिल समूहों को अवरुद्ध करता है। आर्सेनिक का शोषण चमड़ी तथा फेफड़ों से होता है। यह कैंसर जनक माना जाता है। यह जीवनाशी रसायनों के प्रयोग से पर्यावरण में आता है। इस प्रकार स्पष्ट है कि ये भारी धातुएं कितनी अधिक विषैली हैं। शहरी गंदे जल से सींची गयी मिट्टियों में उपजने वाली फसलों में कैडमियम की उच्च मात्राएं पायी जा सकती हैं। अतएव वांछनीय है कि पौधे तथा फसलें कम से कम कैडमियम ग्रहण करें।

पीने योग्य पानी में भारी धातुओं की इष्टतम सीमा इस प्रकार है–

भारी धातु	इष्टतम सीमा (मि.ग्रा./लीटर)
कैडमियम	0.01
कॉपर	0.04
जिंक	0.5
क्रोमियम	0.05
लैड	0.01

यहाँ प्रस्तुत भारी धातुओं के अतिरिक्त अन्य और भी भारी धातुएं हैं जो पर्यावरण प्रदूषण के दृष्टिकोण से महत्वपूर्ण हैं। सामान्यतः भारी धातुएं वे हैं जिनका घनत्व 5 से अधिक हो किंतु आजकल इस मूल संकल्पना में परिवर्तन हो चुका है। अब भारी धातुएं उन्हें माना जाता है जिनमें इलेक्ट्रॉन–अंतरण का गुणधर्म पाया जाता है।

यह देखा गया है कि शैवालों तथा प्लवकों (प्लैंक्टान) में इन धातुओं का बहुत अधिक संचय होता है अतः इन धातुओं के अस्थायी छुटकारे के लिये शैवालों तथा प्लवकों की खेती पर बल देने की आवश्यकता है। शोधों से पता चला हे कि चीड़ का पेड़ मिट्टी से बेरीलियम अवशोषित कर उसे धातु–प्रदूषण से मुक्त करने में समर्थ है।

वाहितमल जल को कृत्रिम जलाशयों में रोककर उसमें शैवालों और जलकुंभी जैसे जलीय पौधों को उगाया जाए तो इस वाहितमल का कुछ हद तक शुद्धीकरण हो सकता है। कारखानों द्वारा निकलने वाले वाहितमल में कैडमियम, पारा, निकैल जैसी भारी धातुओं को जलकुंभी अवशोषित कर लेती है। एक हेक्टेयर क्षेत्रफल में उगाई गई जलकुभी 240,000 लिटर दूषित जल से 24 घंटे में लगभग 300 ग्राम निकैल तथा कैडमियम अवशोषित

कर लेती है। जलकुंभी द्वारा परिशोधित जल का P.H. मान. 6. 8 से 9.8 तक हो जाता है।

विश्व के सभी राष्ट्र पर्यावरण के महत्व को पहचान चुके हैं। पर्यावरण का अध्ययन अब एक विज्ञान बन चुका है। इस विज्ञान के अध्ययन के लिए विविध विषयों की जानकारी आवश्यक है। पर्यावरण पर हम सभी का अधिकार है अतः पर्यावरण की सुरक्षा।

प्रदूषण की समस्या का संबंध किसी व्यक्ति या क्षेत्र–विशेष से नहीं है। इससे प्रभावित होने वालो की संख्या भी किसी वर्ग–विशेष तक सीमित नहीं है। यही कारण है कि प्रदूषण को कम करने के लिए और पर्यावरण संतुलन बनाए रखने के लिए पूरे विश्व के लोग चिंतित है। हमने अपने लोभ और अदूरदर्शिता के कारण पर्यावरण को क्षति पहुँचाई है। प्रदूषण के निराकरण एवं पर्यावरण संरक्षण के लिए व्यक्तिगत लाभ के स्थान पर नैतिक, सामाजिक, विधिक सभी प्रकार के नियंत्रण लगाने की आवश्यकता है।

कल का पर्यावरण कैसा होगा, यह भविष्य ही बताएगा। किंतु इतना तो सुनिश्चित है कि आज हम जितनी सतर्कता बरतेंगे, कल उसी के अनुपात में हमारा पर्यावरण निर्मित होगा। वर्तमान पर्यावरण हमारी देन है। हमने स्वयं पर्यावरण को अपने अनुसार ढालने का प्रयास करके उसे वर्तमान रूप दिया है, अतः कल के पर्यावरण का जो स्वरूप होगा, वह आज के पर्यावरण पर आधारित होगा। यदि हमने वर्तमान पर्यावरण को थोड़ा भी शुद्ध बनाने में सफलता प्राप्त कर ली तो कल का पर्यावरण अवश्यमेव आज से बेहतर होगा। उद्योगों का सबसे महत्वपूर्ण योगदान होगा कि वे पर्यावरण मित्र उत्पादों को विकसित करें जिनमें गैर–पुनर्नवीकरणीय संसाधनों का न्यूनतम उपयोग हो। उद्योगों को चाहिए कि प्रदूषण नियंत्रण संकल्पना को बुद्धिमत्तापूर्ण

व्यवहृत करके पर्यावरणीय समस्याओं को बाध्यता न मानकर अवसर मानें।

ii. अकार्बनिक विषैले पदार्थ

औद्योगिक कूड़े–कचरे में विद्यमान अकार्बनिक अवशेष पदार्थों का निपटान एक समस्या है। ये अवशेष पदार्थ क्रोमियम, निकैल, कैडमियम, मरकरी, लैड आदि भारी तत्वों से युक्त होते हैं जो कि विषैले होते हैं।

उद्योगों से निकलने वाले कूड़े–कचरे मे क्लोराइड और सल्फर डाइऑक्साइड की पर्याप्त मात्रा होती है। सल्फर डाइऑक्साइड कारखानों और तापीय संयंत्रों से निकलती है और मृदा को अम्लीय बनाती है। क्लोराइड सुपर फॉस्फेट कारखानों, सिरेमिक उद्योगों, ऐलुमिनियम, स्टील आदि उद्योगों में प्राप्त होते हैं। क्लोराइड और सल्फर डाइऑक्साइड की मात्रा, पत्तियों में ऊतक क्षय का कारण बनकर पौधों की वृद्धि को नष्ट करती है। ताँबा, मरकरी, कैडमियम, लैड, निकैल आदि भारी तत्व औद्योगिक अपशिष्ट पदार्थों के द्वारा भूमि में पहुँचते हैं। ताँबा व जस्ता युक्त कवकनाशी मृदा प्रदूषण के लिए उत्तरदायी है। स्वचालित वाहनों द्वारा उत्सर्जित गैसों में सीसे की प्रचुर मात्रा होती है जो मृदा द्वारा अवशोषित कर ली जाती है और इस तरह मृदा में विषाक्तता उत्पन्न कर पौधों की वृद्धि को प्रभावित करती है। यह विषाक्तता भूमि में कार्बनिक पदार्थों, चूना आदि के प्रयोग से कम की जा सकती है। सीवेज में अपमार्जक डिटर्जेंट, बोरेट, फॉस्फेट तथा अन्य लवणों की अधिक मात्रा होती है जो कि पौधों की वृद्धि के लिए हानिकारक होती है।

iii. कार्बनिक अनुपयोगी अपशिष्ट

कृषि में प्रयोग किए जाने वाले विभिन्न कीटनाशी, शाकनाशी, कवकनाशी आदि रसायनों से भी काफी हद तक मृदा में प्रदूषण

होता है। यद्यपि इन रसायनों का भूमि में अपघटन होता रहता है और विभिन्न कम विषैले या विषहीन अवशेष पदार्थ बनते हैं, परंतु कुछ रसायन बहुत दीर्घस्थायी होते हैं और इनके अवशेष मृदा के जैवमंडल को बहुत समय तक प्रदूषित किए रहते हैं।

ये रसायन तब तक मृदा और जैवमंडल को असंतुलित किए रहते हैं जब तक इनका पूर्ण विघटन नहीं हो जाता। वाष्पीकरण, वाष्पोत्सर्जन, प्रकाश अपघटन (फोटोलिसिस), पौधों की चयापचयी (मेटाबोलिक) क्रियाओं, निक्षालन, सूक्ष्मजीवों द्वारा विच्छेदन, जल–अपघटन तथा अन्य रासायनिक क्रियाओं के अतिरिक्त मृदा के कणों तथा कार्बनिक कोलाइडों द्वारा विषाक्त रसायनों का अधिक शोषण हो जाता है। कुछ रसायन तथा उनके अवशेष इतने स्थायी देखे गए हैं कि एक बार उपयोग करने के बाद उनके अवशेष वर्षों तक मृदा में मौजूद रहते हैं और मृदा जीवों के लिए अत्यंत विषाक्त बने रहते हैं। मृदा में ऑर्गेनोक्लोरीन कीटनाशियों के स्थायित्व का समय काफी लंबा होता है।

रेडियोसक्रिय अपशिष्ट पदार्थ

रेडियोसक्रिय अपशिष्ट पदार्थ परमाणुनाभिकीय विद्युत् केंद्र में, ईधन पुनःशोधन इकाइयों में, परमाणु अनसंधान केंद्रो में, अस्पतालों में, रेडियोसमस्थानिक उद्योगों में, आयुध उद्योगों आदि से प्राप्त होते हैं। रेडियोसक्रिय अपशिष्टों को तीन वर्गों में विभाजित किया गया है:

(अ) निम्न सक्रियता अपशिष्टः (शीशे के बर्तन, प्लास्टिक की बोतलें आदि)

(आ) मध्यम सक्रियता अपशिष्टः (स्ट्रोंशियम–90, सीजियम–137, कार्बन–14, निकैल–59 आदि)

(उ) उच्च सक्रियता अपशिष्टः (यूरेनियम) जैसे रेडियोन्यूक्लाइड शामिल हैं।

निम्न सक्रियता वाले अपशिष्ट मात्रात्मक दृष्टि से संपूर्ण रेडियोसक्रिय अपशिष्टों के 90 प्रतिशम होते हैं लेकिन निम्न रेडियोसक्रियता के कारण उतने खतरनाक नहीं होते है और इनका निपटान बहुत आसान है। ऐसे अपशिष्टों को ड्रम आदि में बंद करके गहरी खाइयों में दबा दिया जाता है।

मध्यम सक्रियता वाले अपशिष्ट कुल रेडियोसक्रिय अपशिष्टों के केवल 9 प्रतिशत होते हैं। इस वर्ग में नाभिकीय ऊर्जा केंद्रों, रेडियो समस्थानिक उद्योगों, ईंधन पुनःशोधन इकाइयों तथा आयुध उद्योगों में उत्पादित अपशिष्ट (ठोस या द्रव) शामिल हैं।

उच्च सक्रियता वायु अपशिष्ट प्रयुक्त नाभिकीय ईंधन के पुनःशोधन के फलस्वरूप हमारे पर्यावरण में आते हैं। इनमें मुख्यतः यूरेनियम हैं। मात्रा में केवल 1 प्रतिशत होते हुए भी, कुल रेडियोसक्रियता में 59 प्रतिशत योगदान इसी उच्च सक्रियता वाले अपशिष्ट का होता है। ये सब अपशिष्ट अंततः मृदा में ही आते हैं और मृदा को प्रदूषित करते हैं।

रेडियो सक्रिय कणों का विघटन बहुत धीमी गति से होता है और ये मानव शरीर में जमा होने को प्रवृत्ति के कारण घातक होता है। स्ट्रान्शियम 90 (Sr^{90}) रेडियोसक्रियता के विघटन का एक अपशिष्ट उत्पाद है, जिसकी आयुध आयु लगभग 27 वर्ष होती है। नाभिकीय प्रक्रियाओं के फलस्वरूप वायुमंडल में छोड़े गये रेडियोसक्रिय पदार्थों के त्रिगुण में अन्य घटकों के साथ स्ट्रान्शियम 90 भी उपस्थित होता है जो रेडियोधर्मी के त्रिगुण में अन्य घटकों के साथ पृथ्वी की सतह पर आ जाता है। स्ट्रान्शियम तथा उसके सभी समस्थानिक तत्व रासायनिक दृष्टि से कैल्सियम

के समान होते हैं जो कि जंतुओं की हड्डियों का एक महत्वपूर्ण तत्व है। स्तनपोषी में स्तनपान के द्वारा माँ के दूध में उपस्थित कैल्सियम नवजातों में पहुँच जाता है। शाकाहारी पशु जैसे गाय, शारीरिक क्रियाओं के लिए आवश्यक कैल्सियम हरी शाक–सब्जियों को खाकर प्राप्त करते हैं। कोई गाय जब प्रदूषित क्षेत्रों में चरती है तो स्ट्रान्शियम–90 शरीर में उसी प्रक्रिया द्वारा अधिक सांद्रित होने लगता है, जिसके द्वारा कैल्सियम होता है। इस सांद्रता के कारण घास के 1 ग्राम मात्रा की तुलना में 1 ग्राम दूध में स्ट्रान्शियम की मात्रा अधिक होती है। गाय के दूध को मनुष्य विशेषकर बच्चे अधिक ग्रहण करते हैं, इस कारण बच्चों के शरीर में स्ट्रान्शियम के अधिक मात्रा में पहुँचने की संभावना रहती है, दुग्ध स्रवण की अवस्था में माता के शरीर में पहुँचा स्ट्रान्शियम दूध में अधिक सांद्रित होता है। परिणामतः दुग्धपान करने वाले शिशु, माँ के स्तन ही से रेडियोसक्रिय समस्थानिक ग्रहण करने लगता है।

कुछ अन्य रेडियासक्रिय तत्व जैसे–रेडियो आयोडीन (I–131), सीमियम– 137, आयरन–59, कोबाल्ट–60, जिंक–65, कार्बन–14, सीरियम–144, इत्यादि भी इसी प्रकार खाद्य शृंखला के द्वारा प्राणियों के शरीर में प्रविष्ट हो जाते हैं।

अध्याय – 5

भारी धातुएं और मृदा प्रदूषण

कृषि एक औद्योगिक दोनों ही प्रकार के क्रियाकलापों द्वारा मिट्टी में भारी धातुओं की मात्रा बढ़ती जा रही है। अनुपचारिक वाहितमल तथा आपंक (स्लज) के प्रयोग से मिट्टी में भारी धातुओं यथा–कैडमियम, क्रोमियम, लैड, मरकरी इत्यादि की सांद्रता में वृद्धि हो रही है। आजकल शहरों के निकटवर्ती भू–भाग पर सब्जियों की खेती बहुतायत से की जा रही है। इन सब्जियों की फसलों की सिंचाई हेतु प्रायः शहरों के नालों में बहने वाले घरेलू तथा औद्योगिक वाहितमल का प्रयोग किया जाता है जिसके परिणामस्वरूप पौधों के खाद्य भागों विशेष रूप से पत्तियों तथा जड़ों में भारी धातुओं के संचय की पुष्टि हो चुकी है।

कुछ भारी धातुएं जैसे– कॉपर, आयरन, मैंगनीज, जिंक, मॉलिब्डिनम तथा कोबाल्ट की सूक्ष्म मात्रा पौधों के लिए आवश्यक होती है। कुछ भारी धातुएं जैसे क्रोमियम, निकैल तथा टिन की सूक्ष्म मात्रा जानवरों के लिए आवश्यक होती हैं, किंतु कैडमियम, मरकरी, तथा लैड न तो पौधों के लिये आवश्यक है और न ही जानवरों के लिए (अर्थात् पर्यावरण में इनकी उपस्थिति वनस्पतियों, जीवों एवं स्वयं मनुष्य के लिए हानिकारक होती है) ये विषैली

भारी धातुए अनुमेय सांद्रण सीमा से अधिक होने पर मृदा के धात्विक प्रदूषण का कारण बनती हैं।

क्रोमियम अनेक ऑक्सीकरण अवस्थाओं में पाया जाता है किंतु Cr (III)एवं Cr (VI) पर्यावरण में अधिक पाया जाता है। पर्यावरण में क्रोमियम का व्यवहार इसकी ऑक्सीकरण अवस्था के कारण है। Cr (VI) यौगिक मिट्टी/जल में गतिशील हैं तथा विभिन्न प्रकार के जीवों के लिए विषैले हैं। Cr (VI) यौगिक अत्यधिक घुलनशील हैं जबकि त्रिसंयोजी क्रोमियम उदासीन पी. एच पर अक्रिय अवक्षेप बनाते हैं। पर्यावरणीय दृष्टि से षष्ठसंयोजी क्रोमियम ही महत्वपूर्ण है। यह कोशिका विषाक्तता, जीन विषाक्तता तथा कैंसर हेतु उत्तरदायी है।

मृदा पर्यावरण का एक ऐसा घटक है जो सभी प्रकार के प्रदूषणों को अपने में समाहित करती रहती है। अतः पर्यावरण प्रदूषण को रोकने वाला कोई भी प्रयास मृदा प्रदूषण को रोकने में सहायक होगा। तात्पर्य यह है कि यदि पर्यावरण स्वच्छ हो तो मृदा भी स्वच्छ रहेगी।

विश्व के मृदा वैज्ञानिक मृदा को प्रदूषण से मुक्त रखने के लिये निरंतर प्रयोग करते रहे हैं। वाहितमल से होने वाले प्रदूषण को कम करने के लिये भूमि पर बहाने से पूर्व इसका तनूकरण अनिवार्य है। वाहितमल की 1:1000 तक के तनुता मिट्टी तथा पौधों के लिये सुरक्षित रहती है। वाहितमल जितनी ही अधिक दूरी से आता है, उसमें पाए जाने वाले प्रदूषकों की मात्रा भी क्रमशः घटती जाती है। मुख्य रूप से जैव–रासायनिक ऑक्सीजन माँग (बी.ओ.डी.) की मात्रा घटकर 20 मिलीग्राम प्रति लिटर के लगभग हो जाती है। अर्थात् बी.ओ.डी. मात्रा काफी घट जाती है जिससे सिंचाई हेतु जल की गुणवत्ता सुधर जाती है। वाहितमल में उपस्थित नाइट्रोजन व फॉस्फोरस की मात्रा, पादप विषाक्तता,

बी.ओ.डी. जैव विच्छेदनशीलता, भारी तत्व, विषैले कार्बनिक यौगिक लोडिंग रेट को प्रभावित करते हैं। 1000 मिलीग्राम प्रति लिटर या इससे कम बी.ओ.डी. वाले वाहितमल के लिये हाइड्रोलिक लोडिंग रेट भूमि उपचार के लिए उपयुक्त है।

वाहितमल के उपचार के साथ–साथ औद्योगिक अपशिष्टों का भी उपचार किया जाना आवश्यक है। अम्लीय वर्षा वाले क्षेत्रों में चूने का प्रयोग करना चाहिये। अन्यत्र कार्बनिक पदार्थ डाला जाना चाहिए। उर्वरकों की मात्रा घटा देनी चाहिए।

यदि दूषित वाहितमल को नदियों आदि जलस्रोतों में गिराने से पूर्व कृत्रिम जलाशयों में रोककर उसमें शैवालों और जलकुंभी जैसे जलीय पौधों को उगाया जाए तो दूषित जल का शुद्धीकरण किया जा सकता है। कारखानों द्वारा निकलने वाले दूषित जल से 24 घंटे में लगभग 300 ग्राम निकैल तथा कैडमियम अवशोषित कर लेती है तथा 72घंटे में लगभग 1.60 कि.ग्रा. फिनॉल अवशोषित करती है। जलकुंभी द्वारा परिशोधित जल का पी.एच.मान 6.3 से 9.8 तक हो जाता है। इसी प्रकार यदि मल युक्त ठोस पदार्थ (स्लज) को चूर्ण शैल फास्फेट के साथ प्रयोग किया जाए तो भूमि तथा पौधे में भारी तत्वों के एकत्रित होने को रोका जा सकता है।

इस दिशा में नागपुर स्थित राष्ट्रीय पर्यावरण अभियांत्रिकी संस्थान (नीरी) में महत्वपूर्ण शोध कार्य चल रहा है। जैव निम्न (बायोडिग्रेडेशन) की क्रिया मृदा को प्रदूषण युक्त रखने में काफी सहायक होती है। इसमें ऑक्सीकरण–अपचयन, खनिजन, स्थिरीकरण, कार्बनिक अवयवों का निर्माण, जटिल क्रियायें आदि शामिल हैं। प्रत्येक क्रिया को भली प्रकार संपादित होने के लिए उपयुक्त वातावरण होना चाहिए जैसे कि मृदा नमी, मृदा–ताप, मृदा–वायु अनुकूल रहे।

मृदा प्रदूषण से बचने या प्रदूषण कम करने के लिये कुछ अन्य उपाय सुझाए गए हें– जैसे कूड़ा करकट को जला देना, उसकी कंपोस्ट बनाना, बायोगैस बनाना, पशु–चारा बनाना आदि। मृदा वैज्ञानिकों की दृष्टि में मृदा में जैव–अंश की मात्रा बढ़ाकर जीवनाशी आविषता नियंत्रित की जा सकती है। इसी प्रकार अम्लीय मिट्टियों में चूने का प्रयोग करके नाभिकीय विघटन उत्पाद स्ट्रान्शियम (Sr) के अवशोषण को रोका जा सकता है।

आपंक (स्लज) का खाद के रूप में लगातार प्रयोग मृदा प्रदूषण के लिये उत्तरदायी है। अतः आपंक का प्रयोग करने से पूर्व उसका प्राथमिक उपचार अत्यावश्यक है। इसके लिये आपंक में चूना (CaO) मिलाकर अन्योन्य क्रिया द्वारा भारी तत्वों की विषाक्तता कम की जा सकती है। मसूरी रॉक फॉस्फेट के प्रयोग से भी आपंक में उपस्थित भारी तत्वों का विषैला प्रभाव कम किया जा सकता है।

यह देखा गया है कि यद्यपि सीसे के कारण पत्तीदार फसलों को वृद्धि एवं भार पर कोई बुरा प्रभाव नहीं पड़ता किंतु उनके द्वारा अवशोषित सीसे की मात्रा काफी बढ़ जाती है। वस्तुतः चाहे कैडमियम हो या सीसा या क्रोमियम–इनकी अवशोषित मात्राएं सब्जियों के अनुसार घटती बढ़ती हैं। इसलिये हर फसल के लिये यह मात्रा ज्ञात की जानी चाहिए जिसके ऊपर घातक सिद्ध हो। तब ही इनको खाने के काम में लाना चाहिए।

इसी तरह प्रत्येक स्रोत के वाहितमल का विश्लेषण आवश्यक है। इन भारी धातुओं के अतिरिक्त भी वाहितमल बी.ओ.डी. के निर्धारण की आवश्यकता है। वाहितमल में जितनी ही गंदगी होगी, मृदा के संपर्क में आने पर वह अपने विघटन के लिए मृदा से उतनी ही अधिक ऑक्सीजन ग्रहण करेगी। अतएव मृदा के वायुमंडल में ऑक्सीजन की कमी हो सकती है जिससे बीजों के

अंकुरण से लेकर अन्य क्रियाएं एवं कुछ सूक्ष्मजीवी क्रियाएं यथा–नाइट्रीकरण आदि लुप्त हो जाएंगी। जल में कितना ठोस पदार्थ है यह भी जानना आवश्यक है।. इसको 'लोडिंग' कहते हैं। लगातार सिंचाई करते रहने से मृदा में काफी गहराई तक विषैले तत्वों का संचय हो जाता है।

औद्योगिक अपशिष्ट हो या वाहितमल या आपंक इनके निपटान की विधियों पर विदेशों में कार्य चल रहा है। हमें भी अपने देश में दीर्घकालीन प्रयोग वाले मॉडल तैयार करने होंगे।

अध्याय – 6

अपशिष्ट पदार्थ और मृदा प्रदूषण

मृदा कृषि का आधार है। प्रत्येक जीवधारी का प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष संबंध मिट्टी से है। फिर भी हम जाने अनजाने तमाम अनुपयोगी चीजें मृदा में फेंककर उसे मैला करते रहते हैं। आजकल शहरों का कूड़ा–करकट (घरेलू तथा औद्योगिक), मल–मूत्र आदि को मृदा में ही डाला जा रहा है। किसी को भी यह सोचने का अवकाश नहीं कि कहीं मृदा पर उसकी क्षमता से अधिक बोझ तो नहीं पड़ रहा है। मृदा का भी अपना जीवित संसार है, मृदा भी साँस लेती है और सूक्ष्मजीवों की क्रिया द्वारा समस्त गंदगी को विनष्ट करने की उसकी अपनी एक निश्चित सीमा है।

हम जल तथा वायु प्रदूषण को अधिक महत्व देते हैं और मृदा प्रदूषण को अक्सर नजरंदाज कर देते हैं जबकि प्रायः जितने भी प्रकार के प्रदूषण हैं उन सबकों आश्रय देने वाली मृदा ही है।

जिन अन्य स्रोतों से मृदा प्रदूषित हो सकती है, उनमें ग्रामीण क्षेत्रों में मानव मल–मूत्र, पशुओं के शव, कूड़ा–करकट, गोबर आदि मुख्य है। यद्यपि अंततोगत्वा ये पदार्थ विनष्ट होकर मृदा में मिल जाते हैं, किंतु प्रारंभ में प्रदूषण तो फैलाते ही हैं। जो अपशिष्ट विघटनीय है अर्थात् जिनका नवीकरण हो सकता है वे मृदा के लिए भारस्वरूप नहीं होते। वे मृदा के सूक्ष्मजीवों के लिए

भोजन तुल्य हैं– ऊर्जा के स्रोत हैं, किंतु अविघटनीय पदार्थ एक प्रकार से बोझ हैं मृदा के लिए और उनका नवीकरण नहीं अपितु चक्रण होता रहता है। इससे पहले फसलें एवं वृक्ष प्रभावित होते हैं, फिर पशु और मनुष्य।

नगरीय क्षेत्रों में मृदा प्रदूषण का स्रोत कूड़ा–करकट है। नगरीय क्षेत्रों में जनसंख्या में असीमित वृद्धि के कारण मल–मूत्र तथा मानव द्वारा फेंके गए अपशिष्ट, की मात्रा में दिनोदिन अत्यधिक वृद्धि होती जा रही है जिससे नगर प्रशासकों के समक्ष अपशिष्ट इकट्ठा करवाने तथा उसे ठिकाने लगवाने की समस्या उत्पन्न हो रही है। व्यर्थ ठोस पदार्थों से होने वाला प्रदूषण उतना ही हानिकारक है जितना किसी अन्य स्रोत से होने वाला प्रदूषण। हालांकि इन पदार्थों का सूक्ष्मजीवों द्वारा निश्चित मात्रा में विच्छेदन होता रहता है किंतु जब अपशिष्ट तथा मल अत्यधिक मात्रा में एकत्र हो जाता है फिर उसका विच्छेदन संभव नहीं हो पाता है।

अपशिष्ट के प्रकार

1. अधात्विक अपशिष्ट– जैसे अपशिष्ट भोज्य पदार्थ, पैकिंग का अपशिष्ट, रबड़, चमड़ा, कपड़ा आदि उद्योगों का अपशिष्ट।

2. धात्विक अपशिष्ट– जैसे लोहे, काँच, डिब्बे, बोतल, क्राकरी आदि।

3. राख– जलाऊ लकड़ी, लकड़ी का कोयला तथा पत्थर के कोयले की अवशिष्ट राख।

4. भारी कूड़ा करकट– जैसे टायर, मशीनों के टुकड़े, फर्नीचर के टुकड़े आदि।

5. सड़कों का हल्का कूड़ा–करकट– मिट्टी पत्थर व अन्य धात्विक–अधात्विक ठोस पदार्थ।

6. मृत जीव– कुत्ते, पशु, बिल्लियाँ व अन्य मृत जानवर।

7. तोड़े गये मकानों के कूड़ा–करकट– मिट्टी पत्थर व अन्य धात्विक, अधात्विक ठोस पदार्थ।

8. कृषि संबंधी कूड़ा–करकट–फसलों के अपशिष्ट भाग, भूसा, खाद आदि।

9. मल–मूत्र– सुलभ शौचालयों, सार्वजनिक शौचालयों तथा आवासीय घरों का मल–मूत्र आदि।

10. औद्योगिक अवशिष्ट पदार्थ–जैसे ताप विद्युत्गृह की राख, कोयला, नाभिकीय कचरा, रासायनिक कचरा आदि।

भारत के प्रमुख बड़े नगरों में कूड़ा करकट के उत्पादन की दर इस प्रकार है–

सारणी–5.1

भारत के प्रमुख बड़े नगरों में कूड़ा करकट का उत्पादन

नगर	कुल उत्पादन (टन प्रतिदिन)
कोलकाता	4,000
मुंबई	3,500
दिल्ली	3,000
मद्रास	2,200
बेंगलूर	1,000
कानपुर	850
लखनऊ	700
चंडीगढ़	500
वाराणसी	366

इस प्रकार इस तरह के कूड़ा करकट के निस्तारण के उचित प्रबंधन की आवश्यकता है। किसी निश्चित स्थान (भू–भाग) का चुनाव करके वहीं यह सब कूड़ करकट दफनाए जाए न कि इधर–उधर फेंके जाए।

हमारे देश के शहरी क्षेत्रों की आबादी में तेजी से वृद्धि हो रही है साथ ही व्यक्तियों के जीवनयापन के ढंग भी तेजी से बदल रहे हैं। नगर निवासियों की आवश्यकताओं में पैकिंग किए गए पदार्थों की मात्रा बढ़ रही है साथ ही अपशिष्ट पदार्थ भी अधिक उत्पन्न हो रहे हैं। इन सब परिवर्तनों के कारण भविष्य में कूड़ा–करकट एकत्रीकरण, उनके रख–रखाव व उनके उपयोग की ज्वलंत समस्या पैदा हो सकती है।

भारत के नगरों में तो कचरों एवं अपशिष्ट को संग्रह करने की थोड़ी बहुत व्यवस्था है परंतु ग्रामीण क्षेत्रों में इसके लिए कोई व्यवस्था नहीं है। परिणामस्वरूप गांवों में तथा उनके आस–पास वाले क्षेत्रों में आवासीय कूड़ा–करकट बिखरा पड़ा रहता है। भारत के कस्बों तथा छोटे शहरों में तो ठोस अपशिष्टों एवं आवासीय सीवेज के संग्रह तथा निपटान की विकट समस्या है। आवासीय कचरों का बड़ा–बड़ा ढेर कई दिनों तक अपने स्थान पर ही पड़ा रहता है, परिणामस्वरूप उनके सड़ने से उत्पन्न दुर्गंध तथा हानिकारक गैसों के कारण पर्यावरण प्रदूषित होता रहता है।

ठोस अपशिष्टों के प्रबंधन में उनको समुचित रूप में इकट्ठा करना पहला ठोस कदम है। भारतीय नगरों के निवासी अपने घरों से निकलने वाले कचरों को सड़क के किनारों पर नगरपालिकाओं द्वारा कूड़ादानों में, सीधे सड़क पर, भवनों के कोनों में चहारदीवारों के पीछे आदि स्थानों पर फेंकते हैं। यहाँ तक कि बहुमंजिली इमारतों के ऊपरी भाग में रहने वाले लोग अपने घरों के कचरों को सीधे नीचे फेंक देते हैं। इस तरह ऊपर से फेंके गये ठोस अपशिष्ट नीचे गिरते हैं तथा धूलि एवं राख हवा में बिखर जाती हैं।

नगरपालिकाओं के कचरें के ढेरों को घुमंतू मवेशी, चूहे तथा कबाड़ इकट्ठा करने वाले गरीब लोग बिखेरते रहते हैं जिसके कारण कचरे दूर तक फैल जाते हैं। नगरपालिकाओं के कर्मचारी इन अपशिष्टों को इकट्ठा करके उन्हें ट्रक तथा लारियों में भर कर विभिन्न डंपिंग स्थलों पर डंप कर देते हैं। उल्लेखनीय है कि भारतीय नगरों में ठोस अपशिष्टों के इकट्ठा करने तथा कचरों के बड़े–बड़े ढेरों को हटाने का कार्य शायद ही नियमित रूप में किया जाता हो। इसलिए यह आवश्यक है कि नगरी कचरों को नियमित रूप से इकट्ठा किया जाए तथा कूड़ों के ढेरों को शीघ्र हटा लिया जाए। नगरों के व्यस्त व्यापार वाले एवं बाजार क्षेत्रों तथा सब्जी एवं फल की मंडियों एवं बाजारों से नगरपालिका के कचरों का दिन में कम से कम एक बार संग्रह अवश्य हो जाना चाहिए। कस्बों तथा लघु शहरों में भी कचरों के संग्रह की समुचित व्यवस्था होनी चाहिए।

ठोस अपशिष्टों के प्रबंधन का अगला महत्वपूर्ण कदम उनका समुचित निस्तारण करना है। इसके लिए आधुनिक वैज्ञानिक तरीकों को अमल में लाना चाहिए। कचरों के निपटान की प्रक्रिया के अंतर्गत निम्न को सम्मिलित किया जाता है– 1.अपशिष्ट पदार्थों की विधिवत् छँटाई तथा उनका समुचित वर्गीकरण किया जाता है– 1. कंपोस्ट लायक जैविक पदार्थ, 2. अज्वलनशील ठोस अपशिष्ट (यथा– लोहा, लक्कड़, टिन आदि), 3. अत्यधिक ज्वलनशील ठोस अपशिष्ट (यथा– कागज दफ्ती, प्लास्टिक, रबर आदि), 4. ज्वलनशील ठोस अपशिष्ट (यथा– लकड़ी, लकड़ी तथा दफ्ती के डब्बे, कूड़ा–करकट, आदि), 5. मवेशियों तथा सब्जियों के अपशिष्ट तथा, 6. पुनः उपयोग में आने वाले अपशिष्ट।

हमारे देश में फसलों के अवशेष, पशु गोबर जैसे अपशिष्ट पदार्थ तो प्रारंभ से ही उत्पन्न होते रहे हैं, किंतु शहरीकरण व औद्योगिकीकरण के फलस्वरूप पॉलिथीन की थैलियाँ, प्लास्टिक के डिब्बे, टीन तथा अन्य धातु के डिब्बे, काँच के पात्रों के अवशेष, कल–कारखानों में विभिन्न धातुओं की छीजन, ठोस पदार्थ के रूप में तथा औद्योगिक मलजल तथा अवमल तरल व्यर्थ पदार्थ के रूप में एक विकट समस्या बन चुके हैं।

पिछले कुछ सालों से सारी दुनिया में प्लास्टिक का प्रयोग बेतहाशा बढ़ा है। पैकिंग तथा अन्य कुछ वस्तुएं तो एक ही बार प्रयोग करके फेंक दी जाती हैं। 15 प्रतिशत वस्तुओं की टिकाऊ अवधि 8 वर्ष से अधिक होती है। उत्पादित प्लास्टिक का लगभग 35 प्रतिशत प्रतिवर्ष नष्ट हो जाता है। चूँकि प्लास्टिक का चलन आरंभ हुए अभी अधिक समय नहीं हुआ अतः इस अपशिष्ट की मात्रा में निरंतर बढ़ते हुए उत्पादन की मात्रा के समकक्ष होने की संभावना है।

औसतन प्रत्येक भारतीय के पास प्रतिवर्ष आधा किलो प्लास्टिक अपशिष्ट पदार्थ इकट्ठा हो जाता है। इसका अधिकांश भाग कूड़े के ढेर पर और इधर–उधर बिखरकर पर्यावरण प्रदूषण फैलाता है, क्योंकि सेलुलोस तथा पॉलिएस्टर आधारित प्लास्टिक को छोड़कर अधिकांश प्लास्टिक पर जीवाणुओं की कोई क्रिया नहीं होती। वास्तव में प्रदूषण प्लास्टिक प्रयोग के कारण नहीं वरन प्लास्टिक अपशिष्ट पदार्थ को इधर–उधर फेंक देने की हमारी लापरवाही से है।

पर्याचरणविदों के अनुसार भूमि पर यत्र–तत्र–सर्वत्र फैला प्लास्टिक का कचरा प्रकाश संश्लेषण की महत्वपूर्ण प्रक्रिया को प्रभावित कर सकता है, जिसमें कार्बन डाई ऑक्साइड, कार्बोहाइड्रेट,

पेड़–पौधे, जीव–जंतु और यहाँ तक कि मनुष्य स्वयं दुष्प्रभावित हो सकते हैं। वास्तव में प्लास्टिक अनेक रासायनिक तत्वों से मिलकर बनने वाला जटिल पदार्थ है। प्लास्टिक के कठोर एवं लचीलेपन के आधार पर कई तत्व उसमें मिलाए जाते हैं, लेकिन उसमें रासायनिक तत्व किस मात्रा में मिलाया जाता है इसका कोई परीक्षण नहीं होता और नही उपभोक्ता को ऐसी कोई जानकारी दी जाती है।

प्लास्टिक से अनेक भयंकर रोग हो सकते हैं। साधारणतया सभी ऐसा नहीं जानते हैं। 1974 में अमेरिका से पी.वी.सी. (पॉली वेनिल क्लोराइड) बनाने वाले प्लास्टिक उद्योग के कई दर्जन कर्मचारी एंजितआस कौमा नामक बीमारी के शिकार हो गए। इन पर पी.वी.सी. विषैली गैस का बुरा असर पड़ा था। ये कर्मचारी एक प्राणघातक यकृत कैंसर की चपेट में आ गये। जैसे ही इस घटना के बारे में पता चला, अमेरिका में पी.वी.सी. के उत्पाद पदार्थ पर रोक लगा दी गई और चाय आदि सामग्री के लिए इस्तेमाल में लाई जाने वाली प्लास्टिक के पैकिंग के लिए नए नियम बना दिए गये।

कुछ वैज्ञानिकों ने प्लास्टिक कचरे को ऊर्जा स्रोत में बदलने का प्रयोग भी शुरू कर दिया है। प्रारंभिक प्रयोगों से पता चला है कि रद्दी प्लास्टिक को जलाकर ऊर्जा पैदा की जा सकती है। इस ऊर्जा को सुरक्षित और लाभप्रद रूप से लाने के लिए आधुनिक तापीय फर्नेस की आवश्यकता होती है, क्योंकि इस क्रिया से पी.वी.सी. अन्य सामग्री के साथ मिश्रित करने पर अत्यधिक हानिकारक डाई ऑक्सीजन सेवेसो नामक विष उत्पन्न करता है।

वास्तव में पृथ्वी को प्रदूषित करने वाले प्लास्टिक कचरे का लगभग 20 प्रतिशत क्लोराइड आधारित थर्मोप्लास्टिक ही है। प्लास्टिक के पूर्ण संग्रथन के लिये प्लास्टिक अवशेष में से इसके एक सामान्य घटक एपॉक्सी रेजिन का अलग किया जाना अत्यंत आवश्यक होता है क्योंकि यह आसानी से विघटित नहीं होता। 'तोशिबा' कंपनी द्वारा विकसित की जा रही है। इस विधि में थर्मोप्लास्टिक को चूर करके इसे काफी तापक्रम पर तेलउष्मक में गर्म किया जाता है जिससे वे विघटित हो जाते हैं। इसमें सोडियम हाइड्रॉक्साइड मिलाकर विघटित होते थर्मोप्लास्टिक में से निकल रही क्लोरीन को सोडियम क्लोराइड के रूप में बाहर निकाल लिया जाता है। सामान्य वायुमंडलीय दाब पर ये प्लास्टिक टूटकर लगभग सामान्य अनुपात में विभिन्न लंबाइयों की कार्बन श्रृंखलाएं बनाते हैं लेकिन लगभग दस वायुमंडलीय दाब पर छहः से आठ कार्बन परमाणु की श्रृखलाएं अधिक बनती हैं। इसी प्रकार की हाइड्रोकार्बन की श्रृखलाएं पेट्रोल और डीजल जैसी होती है। 'तोशिबा' कंपनी की विधि की विशेषताएं यह है कि इसे सभी प्रकार के थर्मोप्लास्टिक के उपचार के लिए प्रयुक्त किया जा सकता है।

पश्चिमी देशों ने कचरा जलाने या ट्रेंचिंग ग्राउंड में फेंकने की बजाए उसके पुनः चक्रीकरण के मामले में काफी प्रगति की है, जबकि भारत में इस ओर कोई पर्याप्त प्रगति नहीं हो सकी है। यद्यपि भारतीय प्लास्टिक उद्योग प्लास्टिक के अपशिष्टों का पूरी तरह पुनः चक्रीकरण हो जाने का दावा करता है, लेकिन पुनः चक्रीकरण की प्रक्रिया में नष्ट होने वाली बहुमूल्य ऊर्जा की बात आने पर वे चुप्पी साध लेते हैं।

यद्यपि कचरा सिर्फ कचरा नहीं होता, उसके कुछ हिस्से को फिर से उपयोग में लाया जा सकता है। शेष विशुद्ध कचरा ही होता है जो कम विषाक्त से लेकर अत्यधिक विषाक्त तक हो सकता है।

इसी विषाक्तता की वजह से कोई भी संपन्न देश प्लास्टिक कचरे को अपने यहां खपाना नहीं चाहता। आज प्लास्टिक कचरे के निर्यातक देशों में अमेरिका, जर्मनी, ब्रिटेन, आस्ट्रेलिया आदि प्रभाव है। आयातक देशों में भारत, चीन, थाईलैन्ड, पाकिस्तान, बांग्लादश तथा इन जैसे ही अन्य राष्ट्र हैं। प्लास्टिक कचरे का आयात करने वाले देशों को पर्यावरण संगठनों का इस आयात पर आपत्ति है। उनका कहना है कि प्लास्टिक कचरे को जिस विशेष प्रक्रिया द्वारा पुनरुपयोगी बनाया जाता है उसमें कार्य करने वाले प्रशिक्षित नहीं हैं, और फिर एक तो प्लास्टिक कचरे से प्राप्त उपयोगी प्लास्टिक की मात्रा बहुत कम होती है और दूसरे शेष कचरे को लापरवाही से इधर–उधर फेंक या जला दिया जाता है जिससे प्रदूषण बढ़ता है तथा यह प्रदूषण पर्यावरण को दूषित करने के साथ ही घातक बीमारियों के लिए भी जिम्मेदार है। लेकिन इस आपत्ति की अनदेखी ही हो रही है और भारत समेत अन्य देशों द्वारा प्लास्टिक कचरे का आयात जारी है।

प्लास्टिक कचरे के अतिरिक्त 1993 में भारत ने 502 टन लेड कचरा, 346 टन लेड बैटरी कचरा, 30.498 टन टिन तांबा और अन्य धातुओं का कचरा आयात किया। 1993 के बाद से भारत में कचरे का आयात बढ़ ही रहा है। जिस तरह प्लास्टिक कचरे का बहुत थोड़ा अंश पुरुचक्रण द्वारा पुनःरुपयोगी बनाया जा सकता है उसी तरह की स्थिति धातु युक्त कचरे की है। 80 से 85 प्रतिशत धात्विक कचरा किसी काम का नहीं होता। अर्थात्

यदि 100 टन टिन कचरा मंगाया गया तो उसमें 15–20 टन ही उपयोगी होता हे। प्लास्टिक कचरे की तरह धातु कचरा भी पर्यावरण व मानव जीवन के लिए धातक है। धातु कचरे का पुनःचक्रण करने वालों के मानसिक रोगों से ग्रस्त होने का खतरा रहता है।

प्लास्टिक के पुनःचक्रीकरण में ऊर्जा का खर्च काँच वस्तुओं के पुनः चक्रीकरण से काफी अधिक है। वैसे भी वस्तुओं की पैकिंग के काँच, एलुमिनियम व स्टील जैसे परंपरागत साधनों का पुनःचक्रीकरण एक अनंत चलने वाली प्रक्रिया है, जबकि प्लास्टिक व कागज के साथ इस प्रकार की स्थिति नहीं है। कागज के पुनः चक्रीकरण में प्रत्येक बार नए रेशों को मिलाना भी आवश्यक होता है क्योंकि उसके पुराने रेशे छोटे व कमजोर हो जाते हैं। दूसरी ओर प्लास्टिक को एक बार उत्पादन में बदलने के बाद उसका पुनः चक्रीकरण जटिलतापूर्ण कार्य है क्योंकि प्लास्टिक के अपशिष्ट में तेल, धूल व गंदगी की मात्रा काफी अधिक खपत होती है तथा पुनः चक्रीकरण के दौरान लगभग 1200 डिग्री से.ग्रे. पर भट्टी में इसकी सभी अशुद्धियाँ नष्ट हो जाती है जबकि प्लास्टिक का पुनः चक्रीकरण कुछ ही बार संभव है।

विश्व में प्लास्टिक का सर्वाधिक अपशिष्ट जर्मनी में उत्पन्न होता है वहाँ 4.15 लाख टन अपशिष्ट प्रतिवर्ष उत्पन्न होता है जिसमें से 1.65 लाख टन का वह पुनःचक्रीकरण कर देता है तथा शेष प्लास्टिक वह भारत व तीसरी दुनिया के अन्य देशों को निर्यात कर देता है। एक तो भारत के पास स्वयं प्लास्टिक अपशिष्ट की कोई कमी नहीं है और दूसरे हमारे प्लास्टिक के पुनः चक्रीकरण के उद्योग संतृप्त अवस्था में पहुँच चुके हैं। अतः इस स्थिति में कचरे की समस्या से निदान की प्रौद्योगिकी खोजना

अत्यंत आवश्यक हो जाता है। लेकिन विदेशों से हम इस दिशा में जो भी प्रौद्योगिकी खरीद रहे हैं वह वर्तमान संदर्भों में हमारे लिए सार्थक नहीं सिद्ध हो पा रही है। साथ ही कूड़े को जलाने व इससे उड़ने वाली राख भी पर्यावरण व स्वास्थ्य के लिए घातक सिद्ध होती है।

इस दिशा में पर्यावरण विशेषज्ञों द्वारा सुझाए गए कदम काफी उपयोगी साबित हो सकते हैं। उनके अनुसार समस्या का हल ऐसी प्रौद्योगिकी में है जो कचरे को पुनः उपयोगी बना सके अथवा हम ऐसा कचरा ही न बनने दें जो पर्यावरण के लिये घातक हो। पर्यावरण विशेषज्ञों ने कचरा प्रबंधन की कार्यनीति के तहत सर्वप्रथम कचरे को वर्गीकृत करने पर बल दिया है। उनके अनुसार कचरे को उसके स्रोत पर ही बनने से रोका जाए अर्थात् फेंकने योग्य सामग्री का निर्माण न्यूनतम हो। ऐसा करके हम प्लास्टिक कचरे से होने वाले प्रदूषण को कम कर सकते हैं। यद्यपि कूडे–करकट के ढेर से प्लास्टिक की वस्तुएं बीनने वाले छोटे–छोटे बच्चे प्लास्टिक के पुनःचक्रण में अपना महत्वपूर्ण योगदान देते हैं, फिर भी ये सूक्ष्मजीवों की भूमिका तो अदा नहीं कर सकते। अतः वैज्ञानिकों को प्लास्टिक को अपघटित/विच्छेदित करने वाले प्रभावी सूक्ष्मजीवों की खोज अभी जारी रखनी होगी।

प्रायः नगरीय तथा ग्रामीण सभी क्षेत्रों में अनेक वस्तुओं की खपत होती है और तत्पश्चात बहुत से अवशिष्ट प्राप्त होते हैं। इनमें से कुछ का तो उपयोग पुनःचक्रण द्वारा संभव होता है परंतु कुछ अपशिष्ट पदार्थ पूर्णतया अनुपयोगी होते हैं जिनके निस्तारण की उचित व्यवस्था न होने पर 'प्रदूषण' की स्थिति उत्पन्न हो जाती है।

प्रकृति में और समाज में हमेशा पुनःचक्रण की प्रक्रिया चलती रहती है। फलस्वरूप, एक प्रकार का कूड़ा दूसरे प्रकार में उपयोगी सिद्ध हो सकता है। पुनःचक्रण द्वारा पुराना लोहा, प्लास्टिक, काँच कागज आदि वस्तुए घूम फिरकर एक नया रूप लेकर हमारे सामने आ जाती हैं। फिर भी कूड़े की निरंतर बढ़ती मात्रा एक गंभीर समस्या का रूप लेती जा रही है।

ठोस अपशिष्ट पदार्थों से होने वाला प्रदूषण उतना ही हानिकारक है जितना किसी अन्य स्रोत से होने वाला प्रदूषण। शहरी क्षेत्रों में जनसंख्या में वृद्धि के फलस्वरूप कूड़े–करकट, मल–मूत्र आदि की मात्रा में भी निरंतर वृद्धि हो रही है। हालांकि इन पदार्थों का सूक्ष्मजीवों द्वारा निश्चित मात्रा में विच्छेदन होता रहता है किंतु जब कूड़ा–करकट तथा मल अत्यधिक हो जाता है तो फिर इनका विघटन संभव नहीं हो पाता है।

पर्यावरण विशेषज्ञों के लिए ही नहीं, अपितु सामान्य जन के लिये भी कचरा स्वयं में एक गंभीर चुनौती का रूप लेता जा रहा है। बढ़ती आबादी के साथ–साथ ठोस कचरे की मात्रा में भी वृद्धि हो रही है। किसी शहर में उत्पन्न होने वाले कचरे की मात्रा व किस्म उस शहर के आकार व प्रकृति पर निर्भर है।

शहर के विभिन्न हिस्सों के कचरे की किस्म व मात्रा में काफी अंतर होता है। उदाहरण के लिए झुग्गी–बस्तियों के कचरे में जैव–पदार्थों की मात्रा अधिक होती है। वास्तव में कचरे का प्रकार तथा उसकी मात्रा उसके उपभोग, उत्पादन व वृद्धि पर निर्भर है। बड़े उद्योगों से उम्मीद की जाती है कि वे अपने कचरे का स्वयं निपटान करें। मात्र छोटे उद्योगों की कई बार यह स्थिति बनती है कि उनका कचरा नगर पालिका के जिम्मे आ जाता है। इसी प्रकार से अस्पतालों को अपने कचरे का इंतजाम

सामान्य कचरे से अलग करना होता है। वे या तो इसे जला डालें या अन्य कचरे में मिलाने से पूर्व इसे जीवाणु–रहित बनाएं। अस्पताल के कचरे की परिवहन व्यवस्था भी अलग से करनी होती है। वैसे ऐसा कभी होता नहीं।

ऐसा अनुमान है कि शहरी क्षेत्रों में उत्पन्न म्यूनिसिपल कचरे में से 40 से 75 प्रतिशत तक जैव पदार्थ होता है। हालांकि कचरे का संघटन काफी हद तक निवासियों की माली हालत पर भी निर्भर है। जैसे गरीब क्षेत्रों में घरेलू कचरे के अलावा विभिन्न अनौपचारिक जीवन–यापन क्रियाकलापों का कचरा भी होता है।

देश के किसी भी शहर की ओर देखें तो स्पष्ट हो जाता है कि ठोस कचरे के प्रबंधन में कितनी उपेक्षा बरती गई है। पर्यावरण के ह्रास व सेहत संबंधी मुद्दे तो इससे जुड़े ही हैं, साथ ही इसके शहरी विकास के आर्थिक व संस्थागत सरोकारों का भी पता चलता है। कचरे के प्रबंधन हेतु उपलब्ध ढांचा तथा निवेश के बावजूद यह स्थिति है।

कचरे को नियत डिब्बे में डालना लोगों को काफी असुविधाजनक लगता है। इसलिए सामान्यतः सारा कचरा फुटपाथों, गलियों के किनारे या खुली नालियों में फेंका जाता है। जब लोग कचरा–डिब्बे में कचरा फेंकते ही हैं, तो थोड़ी दूर से भी। लिहाजा कचरा डिब्बे के इर्द–गिर्द बिखरा होता है। इससे अस्वास्थ्यकर स्थिति तो निर्मित होती ही है, साथ में म्यूनिसिपल कर्मचारियों के लिए इस कचरे को उठाकर ले जाना भी मुश्किल हो जाता है। जहाँ कचरा फेंकने के लिए पक्के ढांचे बनाये जाते हैं उनकी दीवारों के किनारे कचरा पड़ा ही रहता है और सड़ने लगता है। यह भी देखा गया है कि कचरा रखने के डिब्बे कई बार उपयुक्त जगह पर नहीं रखे होते हैं। सब कई बार लोग अन्य सुविधाजनक स्थानों पर कचरा फेंकने लगते हैं।

कचरे के प्रकार से यह तय होता है कि कितनी जल्दी–जल्दी इसे हटाना जरूरी है। जब कचरे में जैव पदार्थों की मात्रा ज्यादा हो तथा जलवायु गर्म हो तो कचरा ज्यादा जल्दी सड़ने लगता है। ऐसी परिस्थिति में यदि कचरा पड़ा रहे तो बदबू फैलती है और सेहत के लिए खतरा पैदा होता है। भारत जैसे देशों में कचरे में जैव पदार्थ की मात्रा ज्यादा होती है, जलवायु गर्म है और रहने की जगह भी तंग है, अतः यहाँ कचरे को जल्दी–जल्दी हटाना आवश्यक हो जाता है।

खनन अपशिष्टों का उत्पादन विभिन्न खनिज पदार्थों के खनन, उनको ट्रकों, मालगाड़ियों आदि पर लादते तथा उनसे उतारते समय होता है। खनन के समय किसी खास प्रकार के खनिज की प्राप्ति के पूर्व ऊपर स्थित शैलों को तोड़ा जाता है। इससे उत्पन्न मलबे का ढेर लग जाता है। उदाहरण के लिए धात्विक खनिजों (यथा– लौह अयस्क) के खनन के समय मिट्टी, शैल तथा अन्य अपशिष्ट की भारी मात्रा उत्पन्न हो जाती है। सतह के नीचे स्थित कोयले के खनन के लिए शैलों के ऊपरी आवरण को हटाना पड़ता है। इस प्रक्रिया के दौरान मलबे का अम्बार लग जाता है। इन पदार्थों को अन्यत्र "डंप" करना पड़ता है। परिणामस्वरूप खनन क्रिया से उत्पन्न अपशिष्टों का पहाड़ सा खड़ा हो जाता है। इन अपशिष्टों के ढेर के कारण एक तरफ तो बहुमूल्य धरातलीय सतह दब जाती है, दूसरी तरफ, उनमें मौजूद विषाक्त रसायनों के कारण आस–पास का पर्यावरण भी प्रदूषित हो जाता है।

औद्योगिक अपशिष्टों के अंतर्गत भारी मात्रा में परित्यक्त सामग्रियों को सम्मिलित किया जाता है। उदाहरण के लिए, चीनी उत्पादन के समय चीनी कारखानों से भारी मात्रा में खोई का

उत्पादन होता है। इस खोई का ढेर चीनी मिलों के पास ही लगा दिया जाता है। बरसात के दिनों में सड़ने के कारण इनसे दुर्गंध निकलती है। ताँबा गलाने एवं एल्युमीनियम के कारखानों से खतरनाक अपशिष्ट पदार्थ निकलते हैं। ये पदार्थ वनस्पतियों तथा मृदाओं के लिये काफी हानिकारक होते हैं। इस तरह के कई उदाहरण प्रस्तुत किए जा सकते हैं।

कृषिजनित अपशिष्टों के अंतर्गत फसलों की जड़ों, तनों, भूसा, गोबर चारे के अपशिष्ट आदि को सम्मिलित किया जाता है। वास्तव में विकासशील देशों में कृषि से उत्पन्न अपशिष्टों की कोई खास समस्या नहीं है क्योंकि इन अपशिष्ट सामग्रियों का कई रूपों में कई बार उपयोग किया जाता है। उदाहरण के लिए जानवरों के गोबर का उपला बनाने के लिए कंपोस्ट खाद बनाने तथा जलाने के लिए उपयोग किया जाता है। धान की मड़ाई के बाद पुआल का या तो पशुओं के चारे के लिए उपयोग किया जाता है या खाद के लिये उन्हें खेतों में जला दिया जाता है।

नगर पालिकाओं के अपशिष्टों के अंतर्गत ठोस पदार्थों यथा–अखबार, कागज, प्लास्टिक के सामान, डिब्बों एवं कनस्तरों, काँच की बोतलों तथा शीशियों, एल्युमिनियम की पट्टियों एवं चद्दरों, विभिन्न प्रकार के कबाड़ों यथा बेकार स्वचालित वाहन, इनके पहिये तथा अन्य बेकार लोहा–लक्कड़, सब्जियों के कचरों तथा आवासीय क्षेत्रों से निकलने वाले कूड़ा करकट एवं कचरों को सम्मिलित किया जाता है। अविकसित देशों में अखबारों के अपशिष्टों की कोई समस्या नहीं है। क्योंकि इनका विभिन्न रूपों में इस्तेमाल किया जाता है।

उद्योगों से निकलने वाला बहिःस्राव हानिकारक अपशिष्ट पदार्थों से युक्त रहता है, जिनका निस्तारण अति आवश्यक होता

है। सदा ही से उद्योगों को जल की मांग की पूर्ति के लिए तथा अपशिष्ट पदार्थों के सुगम समापन के उद्देश्य से अधिकांशतः बड़ी नदियों या जलाशयों के किनारे स्थापित किया जाता रहा है। औद्योगिक संस्थाओं को यह आर्थिक रूप से तथा सुविधा की दृष्टि से लाभप्रद भी होता है कि जो भी अनुपचारित बहिःस्राव हो, उसे निकटस्थ जलाशय में डंप कर दिया जाए। प्रारंभ में तो इसके दुष्परिणाम परिलक्षित नहीं होते, पर जैसे–जैसे औद्योगिकीकरण बढ़ता है, नदी तथा अन्य जलाशय, औद्योगिक अपशिष्टों की मात्रा में वृद्धि के कारण अधिकाधिक प्रदूषित होते जाते हैं। यही कारण है कि औद्योगिक रूप से विकसित देशों के तो अधिकांश बड़े जल स्रोत गंभीर रूप से संदूषित होकर नष्ट होने की स्थिति में पहुँच गए हैं।

प्रत्येक उद्योग में उत्पादन प्रक्रिया के उपरांत अनेक अनुपयोगी पदार्थ शेष बचे रहते हैं। अधिकांश उद्योगों में बहिःस्राव में अनेक मुख्यतः धात्विक तत्व तथा अनेक प्रकार के अम्ल, क्षार, लवण, तेल, वसा, इत्यादि विषैले रासायनिक पदार्थ उपस्थित रहते हैं, जिनसे गंभीर जल प्रदूषण की संभावना रहती है। ऐसे जल से सिंचाई करने पर मृदा में धात्विक प्रदूषण की स्थिति उत्पन्न हो सकती है।

अध्याय – 7

रासायनिक उर्वरक और मृदा प्रदूषण

मृदा और जल दो महत्वपूर्ण प्राकृतिक संसाधन हैं जिन पर किसी भी देश की कृषि निर्भर करती है। मृदा एवं जलप्रबंधन के प्रभावी उपायों को अपनाकर निंरतर बढ़ती हुई जनसंख्या के भरण–पोषण की चुनौती से निपटा जा सकता है। एक अनुमान के अनुसार सन् 2020 तक हमारी जनसंख्या 1.8 प्रतिशत की मौजूदा वृद्धि दर के साथ 30 प्रतिशत तक बढ़ जाएगी जिसके लिए 50 प्रतिशत अतिरिक्त खाद्यान्नों की जरूरत होगी।

हमारी मृदा, जल तथा वायु निरंतर प्रदूषित होते जा रहे हैं। भौतिक, रासायनिक तथा जैविक दशाएं बिगड़ती जा रही हैं, सघन खेती एवं रासायनिक उर्वरकों के अत्यधिक प्रयोग से पर्यावरण पर प्रतिकूल असर पड़ रहा है। मृदा की उर्वरा शक्ति कम हो रही है जिसके परिणामस्वरूप पर्याप्त उत्पादन नहीं मिल पा रहा है।

वर्तमान परिवेश को देखते हुए मृदा को प्रदूषित होने से बचाना अत्यंत आवश्यक है जिससे मृदा की उर्वरा शक्ति का नुकसान न हो सके। इसलिए फसलों में प्रयोग किए जाने वाले रासायनिक उर्वरक के अनुचित व असंतुलित मात्रा में बिना सूझ–बूझ के प्रयोग में कमी लाने की आवश्यकता है अन्यथा मृदा

में उपस्थित लाभकारी जीवाणु ओर जीव–जंतु विलुप्त हो जाएंगे। साथ ही रासायनिक उर्वरकों की बढ़ती कीमतों व उनके कम उत्पादन होने की वजह से छोटे किसान बुरी तरह से प्रभावित होंगे। अतः फसलों से अच्छी गुणवत्ता की अधिक पैदावार लेने के लिए तथा जमीन के उपजाऊपन को बनाए रखने के लिए रासायनिक उर्वरकों का संतुलित प्रयोग आवश्यक है। इसके लिए खेती में रासायनिक उर्वरकों के साथ–साथ पौधों को पोषक तत्व प्रदान करने वाले स्रोतों के प्रयोग की आवश्यकता है।

रासायनिक उर्वरकों के अनुचित और असंतुलित प्रयोग ने हरित–क्रांति की सफलता पर प्रश्न चिह्न लगा दिया है। कभी हरित–क्रांति आवश्यक थी। परंतु रासायनिक उर्वरकों का उपयोग इतना अधिक हो गया है कि अब इसके दुष्परिणाम स्पष्ट दीख रहे हैं। देश के अनेक कृषि क्षेत्रों में पौधों के लिए तीन मुख्य पोषक तत्वों नाइट्रोजन, फॉस्फोरस व पोटाश का प्रयोग असंतुलित अनुपात में किया जा रहा है। किसी–किसी क्षेत्रों में तो यह अनुपात 9:2:1 है, जबकि अनाज वाली फसलों में आदर्श अनुपात 4:2:1, दाल वाली फसलों 1:2:1 तथा सब्जी वाली फसलों यह अनुपात 2:1:1 होना चाहिए। स्वस्थ जीवन के लिए हम सबको स्वच्छ वायु, जल, भोजन, चारा, ईंधन, आवास और प्रदूषण मुक्त पर्यावरण की आवश्यकता है। ये आवश्यकताएं कहीं न कहीं आधुनिक खेती से जुड़ी हुई हैं। बढ़ते शहरीकरण, आधुनिकीकरण, औद्योगिकीकरण, और रासायनिक उर्वरकों के अंधाधुंध व असंतुलित प्रयोग से उपजाऊ भूमि बंजर भूमि में तब्दील हो रही है जिसके परिणामस्वरूप पारिस्थितिक असंतुलन की स्थिति पैदा हो गई है।

उर्वरकों के असंतुलित प्रयोग के दुष्परिणाम

1. अत्यधिक प्रयोग से वायु, जल और मृदा प्रदूषण में

लगातार वृद्धि जिसके फलस्वरूप मानव स्वास्थ्य पर भी प्रतिकूल प्रभाव पड़ रहा है।

2. रासायनिक उर्वरकों के लगातार असंतुलित प्रयोग से कृषि भूमि की उर्वरता और उत्पादकताा दोनों घटती जा रही है।

3. केंचुए और मिट्टी में उपस्थित अनेक सूक्ष्मजीव अपनी जैविक क्रियाओं से भूमि को पोषक तत्व तो देते ही हैं, साथ ही मिट्टी को भुरभुरा बनाकर उसमें धूप और हवा के आवागमन को सुगम बनाते हैं। परंतु दुर्भाग्यवश रासायनिक उर्वरकों के बढ़ते प्रयोग से केंचुए विलुप्त होते जा रहे हैं।

4. असंतुलित उर्वरक के उपयोग में मुख्यतः नाइट्रोजन प्रदान करने वाले अकार्बनिक उर्वरकों के अधिक प्रयोग करने से मृदा में कुछ द्वितीयक व सूक्ष्म पोषक तत्वों की कमी होती जा रही है जिसके परिणामस्वरूप फसलों की गुणवत्ता और पैदावार पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ रहा है।

5. दलहनी फसलों में अत्यधिक नाइट्रोजन के प्रयोग करने अथवा अधिक उर्वरता वाली भूमि में उगाने के फलस्वरूप जड़ों की ग्रंथि के निर्माण और वायुमंडलीय नाइट्रोज़न स्थिरीकरण प्रक्रिया पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ रहा है।

6. देश के अनेक कृषि क्षेत्रों जैसे पंजाब, पश्चिमी उत्तर प्रदेश और हरियाणा आदि में एक ही किस्म के रासायनिक उर्वरकों के अत्यधिक और अंधाधुंध प्रयोग के परिणामस्वरूप उपजाऊ भूमि का बहुत बड़ा हिस्सा तेजी से लवणीय, अम्लीय और क्षारीय भूमि में तब्दील होता जा रहा है।

7. प्रयोग किए गए रासायनिक उर्वरकों का अधिकांश भाग भूमि में रिस कर या अन्य विधियों से भूमिगत जल, नदियों, तालाबों और झरनों में मिल जाता है जिसके फलस्वरूप पानी के स्रोत प्रदूषित होते जा रहे हैं। साथ ही फसल उत्पादों में इन रसायनों की विषाक्तता भी बढ़ती जा रही है।

8. रासायनिक उर्वरकों के बढ़ते प्रयोग से मृदा के भौतिक, रासायनिक और जैविक गुणों पर भी प्रतिकूल प्रभाव पड़ रहा है जिससे पोषक तत्वों एवं खनिज लवणों का बहुत बड़ा हिस्सा पौधों को प्राप्त नहीं हो पाता।

9. इसके अलावा किसानों के अनेक मित्र कीट जैसे मधुमक्खी, तितली और भौरे इत्यादि, जो परागण में मद्द करते हैं, भी बुरी तरह से प्रभावित हो रहे हैं।

10. उर्वरकों से निकलने वाली ग्रीन हाउस गैस (नाइट्रस ऑक्साइड) वायुमंडल में उपस्थित ओजोन परत को नष्ट करती है। ओजोन परत सूर्य से निकलने वाली खतरनाक पराबैंगनी किरणों को रोकने में मद्द करती है।

उर्वरकों द्वारा होने वाले प्रदूषण को कम करने के उपाय :

1. खेती की मिट्टी की जाँच के आधार पर ही रासायनिक उर्वरकों की मात्राएं सुनिश्चित करें।

2. भरपूर पैदावार के लिए पर्ण वर्ण संचित्र (लीफ कलर चार्ट) तकनीक द्वारा फसलों में उर्वरकों की संस्तुति की जानी चाहिए। इस तकनीक का मूलभूत सिद्धांत यह है कि पत्तियों का हरापन जितना ज्यादा होगा, उतना ही उर्वरकों की कम आवश्यकता पड़ती है। चार्ट में दिए गए अंकों के आधार पर उर्वरकों की मात्रा और उनके प्रयोग का सही समय तय किया जाता है।

3. फसल उत्पादों की अच्छी गुणवत्ता और अधिक पैदावार लेने के लिए गोबर की खाद, मुर्गी खाद, वर्मी कंपोस्ट, हरी खाद, फसल चक्र में दलहनी फसलों का समायोजन और अन्य जैविक खादों का प्रयोग भी रासायनिक उर्वरकों के साथ अपेक्षित है। इससे पौधों को मुख्य, गौण व सूक्ष्म पोषक तत्व पर्याप्त मात्रा में

और लंबी अवधि तक मिलते रहते हैं।

4. इसके अतिरिक्त खेती में रासायनिक उर्वरकों के साथ–साथ जैव उर्वरकों जैसे– एजोटोबैक्टर, राइजोबियम, नील हरित शैवाल, अजोला, एजोस्पिरिलम, फॉस्फोबैक्टीरिया व माइकोराइजा का प्रयोग भी लाभदायक रहता है। जैविक उर्वरकों के प्रयोग से विभिन्न फसलों की उपज में 15–25 प्रतिशत की वृद्धि हो सकती है।

5. किसानों को समय–समय पर रासायनिक उर्वरकों के संतुलित प्रयोग के लिए उचित परामर्श देकर भी इनके दुष्प्रभावों को कम किया जा सकता है। इसके लिए किसानों को उर्वरकों की उपयुक्त प्रयोग विधि व उनके प्रयोग करने के उचित समय की जानकारी होना अति आवश्यक है। इसके लिए किसान सम्मेलन, किसान संगोष्ठी एवं किसान दिवस आदि का आयोजन किया जा सकता है।

6. रासायनिक उर्वरकों को बेचने वाले डीलरों की सलाह पर ही किसान इन उर्वरकों का प्रयोग करते हैं। यदि इसके लिए कृषि वैज्ञानिकों, कृषि विशेषज्ञों व कृषि प्रसार कर्मियों की मद्द ली जाए तो अच्छा रहेगा। इस प्रकार किसान अनावश्यक खर्च से भी बच जाएगा और फसल की अच्छी गुणवत्ता होगी व अधिक उत्पादन हो सकेगा। इसके साथ–साथ नकली रासायनिक उर्वरकों की आपूर्ति पर भी प्रतिबंध लग सकेगा।

सारणी 1– मृदा उर्वरता के मानक स्तर

क्र. सं.	गुण / कारक	निम्नतम	मध्यम	उच्चतम
1.	कार्बनिक कार्बन प्रतिशत	0.5 से कम	0.5–0.75	0.75 से अधिक
2.	उपलब्ध नाइट्रोजन (कि.ग्रा. / हे.)	280 से कम	280–560	560 से अधिक
3.	उपलब्ध फॉस्फोरस (कि.ग्रा. / हे.)	10 से कम	10–25	25 से अधिक
4.	उपलब्ध पोटाश (कि.ग्रा. / हे.)	108 से कम	108–280	280 से अधिक
5.	मृदा पी.एच.मान	अम्लीय 6.5 से	उदासीन 6.5–8.5	क्षारीय 8.5 से अधिक
6.	विद्युत् चालकता	सामान्य	क्रांतिक	संवेदनशील
7.	कुल विलीन लवण (dsm-1)	1 से कम	1–4	4 से अधिक

सारणी 2– मृदा के भौतिक, रासायनिक और जैविक गुणों पर रासायनिक उर्वरकों का प्रभाव

क्र. सं.	मृदा गुण	जैविक खेती	रासायनिक खेती
1.	पी.एच. मान$^{-1}$	7.26	7.55
2.	विद्युत् चालकता (डेसी मी.) (dsm^{-1})	0.76	0.78
3.	कार्बनिक कार्बन	0.585	0.405
4.	नाइट्रोजन (कि.ग्रा./हे.)	256	185
5.	फॉस्फोरस (कि.ग्रा./हें)	50.5	28.5
6.	पोटाश (कि.ग्रा./हे.)	459.5	426.5
7.	नाइट्रोजन (प्रतिशत)	0.068	0.050
8.	कार्बनिक बायोमास (मि.ग्रा./कि. ग्रा. मिट्टी)	273	217
9.	एजोबैक्टर (1000/ग्राम मिट्टी)	11.7	0.8
10.	फॉस्फोबैक्टीरिया (100000/कि. ग्रा. मिट्टी)	8.8	3.2

इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि कृषि उत्पादन की एक टिकाऊ व्यवस्था बनाए रखने के लिए रासायनिक उर्वरकों पर निर्भरता कम करते हुए पौधों के लिए आवश्यक पोषक तत्वों की आपूर्ति के अन्य विकल्पों को शामिल करने की आवश्यकता हैं।

अध्याय – 8

पीड़कनाशी और मृदा प्रदूषण

पीड़कनाशी ऐसे रसायन हैं जो पौधों को क्षति पहुंचाने वाले कीटों, कवकों, सूत्रकृमियों, कृंतकों एवं खरपतवारों को नष्ट करते हैं, या उन पर नियंत्रण रखते हैं। पीड़कनाशियों को उनके प्रकार और उपयोग के आधार पर कीटनाशी, कवकनाशी, सूत्रकृमिनाशी, खरपतवारनाशी, शाकनाशी आदि वर्गों में वर्गीकृत किया गया है।

फसलों से अधिक उत्पादन प्राप्त करने हेतु फसल संरक्षण में पीडकनाशी रसायनों का प्रयोग बहुत समय से हो रहा है। आरंभ में ये रसायन बहुत ही प्रभावी सिद्ध हुए, किंतु विगत कुछ दशकों से इनकी मारक क्षमता में कमी आई है तथा इनके अत्यधिक प्रयोग के फलस्वरूप पर्यावरण प्रदूषण की समस्या भी उत्पन्न हो गई है। पर्यावरण के विभिन्न घटकों यथा मृदा, जल, वायु, पौधे, जीवजंतु, दूध, अंडा, माँस तथा अन्य खाद्य पदार्थ सभी में इन रसायनों के अवशेष पाए जा रहे हैं। इन समस्याओं के निराकरण हेतु रसायनों के कम से कम इस्तेमाल पर बल दिया जा रहा है।

रॉशेल कार्सन ने अपनी प्रसिद्ध पुस्तक "द साइलन्ट स्प्रिंग" में बिना सोचे, समझे कीटनाशकों के अंधाधुंध प्रयोग के बारे में विस्तार से वर्णन किया है। उन्होंने बताया कि कीटनाशियों

का इतनी लापरवाही से प्रयोग किया गया है कि वास्तविक हानिकारक कीटों के अतिरिक्त अन्य जीवों को भी नष्ट कर दिया गया, जिसका परिणाम यह हुआ कि कीटों का जैविक नियंत्रण प्रभावित हुआ और कीटों में रासायनिक कीटनाशियों के प्रति प्रतिरोध उत्पन्न हो गया, कीट पुनः बड़ी संख्या में उत्पन्न हुए, द्वितीयक हानिकारक कीट भी उत्पन्न हो गए और पर्यावरण प्रदूषण की समस्या उत्पन्न हो गई।

जीवजगत् में पौधभक्षी कीट 26 प्रतिशत एवं शिकारी, परजीवी, परागणकर्मी तथा सफाईकर्मी कीट 31 प्रतिशत हैं। पादपभक्षी अथवा पीडकनाशी की केवल एक प्रतिशत जातियाँ ही क्षति पहुँचाती हैं। विश्व में मात्र 3500 कीटों की जातियाँ ही पीडकनाशी के रूप में पहचानी ग़ई है। हमारे देश में कीटों की लगभग 1000 जातियाँ ही फसलों एवं फसल उत्पादन को खेतों में अथवा भंडारण में क्षति पहुँचाती हैं।

कृषि में प्रयुक्त किए जाने वाले विभिन्न कीटनाशी, शाकनाशी, कवकनाशी आदि रसायनों का भूमि में विघटन होता रहता है और इनके तरह–तरह के कम विषैले या विषरहित अवशेष पदार्थ बनते रहते हैं, परंतु इनमें से कुछ रसायन दीर्घस्थायी होते हैं और इनके अवशेष पदार्थ मृदा जैवमंडल को बहुत समय तक प्रदूषित किये रहते हैं। इन रसायनों के अवशेष उत्पाद मृदा सूक्ष्मजीवों को (जो कि मृदा की उर्वरता के लिये उत्तरदायी होते हैं) प्रभावित करते हैं और उनकी कार्यशीलता को कम कर देते हैं। ये रसायन तब तक मृदा जैवमंडल को असंतुलित किए रहते हैं, जब तक कि इनका पूर्ण विघटन नहीं हो जाता।

वाष्पीकरण, वाष्पोत्सर्जन, जल–अपघटन, प्रकाश–अपघटन (फोटोलिसिस), पौधों की उपापचयी क्रियाओं, निक्षालन, सूक्ष्मजीवों

द्वारा विच्छेदन तथा अन्य रासायनिक क्रियाओं के अतिरिक्त मृदा के कणों तथा कार्बनिक पदार्थ द्वारा इन विषाक्त रसायनों का अधिशोषण हो जाता है। कुछ रसायन तथा उनके अवशेष इतने स्थायी देखे गए हैं कि एक बार उपयोग करने के उपरांत मृदा में वर्षों तक विद्यमान रहते हैं और मृदा जीवों के लिए अत्यंत विषाक्त बने रहते हैं। मृदा में ऑर्गेनोक्लोरीन वर्ग के कीटनाशियों का स्थायित्व काल काफी लंबा होता है। इनमें से डी.डी.टी. तो काफी अलोकप्रिय हो चुका है। इनके अवशेष कई वर्षों तक मृदा में विषाक्त रूप में बने रहते हैं।

मृदा में आर्गेनोक्लोरीन कीटनाशियों के स्थायित्व पर बहुत शोध कार्य हुआ है। इनके दीर्घस्थायित्व के कारण ही ऑर्गेनोफॉस्फेट, कार्बामेट, संश्लेषित पायरेथ्राइड आदि अति विषाक्त, अल्पस्थायी रसायनों की खोज हुई जो ऑर्गेनोक्लोरीन,रसायनों की अपेक्षा अल्पस्थायी तो हैं पर इनके तीक्ष्ण विष मृदाजीवों के लिए हानिकारक हैं और पर्यावरण को प्रदूषित करते हैं।

दीर्घस्थायी रसायन तब तक मृदा जैवमंडल को प्रदूषित किए रहते हैं जक तक ये पूर्णरूप से नष्ट नहीं हो जाते। मृदा के कणों तथा कार्बनिक कोलॉइडों द्वारा इन विषाक्त जीवनाशी रसायनों का अधिशोषण भी एक महत्वपूर्ण क्रिया है जो मृदा की उर्वरता को प्रभावित करती है। यह अधिशोषण कीटनाशी रसायन की उपलब्धि, उसकी जैविक क्रिया, सूक्ष्मजीवों के प्रति सहयता और उनकी उपापचयी क्रिया आदि को तो प्रभावित करता ही है, साथ ही मृदा में कार्बनिक पदार्थों के विघटन, नाइट्रोजन स्थिरीकरण, फॉस्फोरस तथा सल्फर के विलयनीकरण आदि से संबंधित महत्वपूर्ण क्रियाएं भी इससे प्रभावित होती हैं। दीर्घस्थायी रसायन प्रयुक्त भूमि से वर्षा व सिंचाई जल द्वारा बहकर नदी, पोखरों, जलाशयों में तथा निक्षालन द्वारा मृदा के निचले संस्तरों में जमा

होते रहते हैं। मृदा में पड़े अवशेष मृदाजीवों के ऊतकों में आसानी से पहुंचकर संचित होते देखे गए हैं। डी.डी.टी. गैमेक्सीन, एल्ड्रिन आदि कुछ ऐसे रसायन हैं जो धीरे–धीरे जीव–जंतुओं के शरीर में एकत्रित होकर विभिन्न बीमारियाँ उत्पन्न करते हैं।

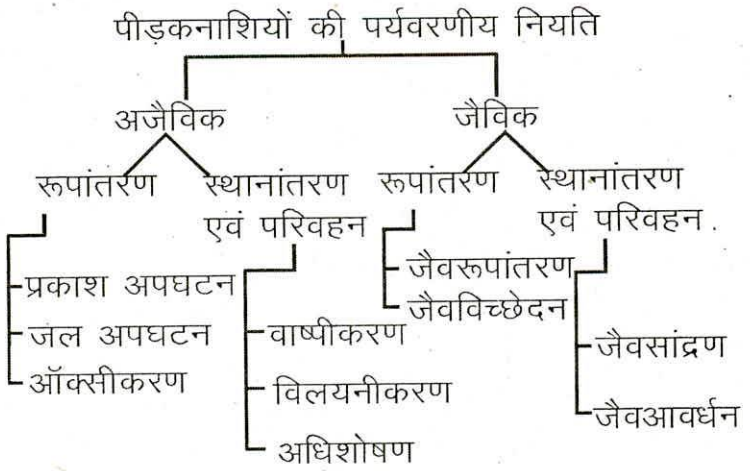

विभिन्न पर्यावरणीय घटकों में संपन्न होने वाली स्थानांतरण प्रक्रियाएं

प्रक्रियाएं	पर्यावरणीय घटक, जिनमें ये प्रभावी होती हैं।
जैव–विच्छेदन	मृदा, जल
जल–अपघटन	मृदा, जल
प्रकाश–अपघटन	वायु, मृदा, जल

पारिस्थितिक प्रतिक्रियाओं के कारण बहुत से कीटों में उनके नियंत्रण के लिए प्रयुक्त होने वाले कीटनाशियों के प्रति प्रतिरोध उत्पन्न होने लगा। इसके परिणामस्वरूप कीट–नियंत्रण के उपाय प्रभावहीन होने लगे।

इससे कम हानि पहुँचाने वाले पीडक अधिक हानि पहुँचाने वाले पीडक कीटों में परिणत हो गए। इन परिस्थितियों ने रासायनिक नियंत्रण विधि को ऐसे दोराहे पर लाकर खड़ा कर दिया कि पिछले अनुभवों के आधार पर इस उपाय पर पुनर्विचार एवं गहन परीक्षण आवश्यक हो गया। फलतः इससे यह निष्कर्ष निकालने के लिए बाध्य होना पड़ा कि पीडक नियंत्रण का अंतिम हल ऐसे उपायों में निहित है जिसमें कीटनियंत्रण में प्रयुक्त होने वाले विभिन्न उपायों का संगत और संतुलित समन्वय किया जाये। इसे समन्वित तथा समेकित कीट प्रबंधन का नाम दिया गया। कीटनाशी रसायन इस व्यवस्था के महत्वपूर्ण अंग हैं। लेकिन उनके उपयोग के लिए यह आवश्यक हो गया कि उनका उपयोग अधिक तर्कपूर्ण और संतुलित रूप में किया जाए जिससे लाभकारी कीटों पर कम से कम प्रभाव पड़े।

कीटनाशियों को बार–बार उपयोग में न लाकर यदि आवश्यकतानुसार व्यवहार में लाए तो इनकी मात्रा को कम किया जा सकता हैं। इसी के साथ ही यह भी उतना ही महत्वपूर्ण है कि किसी पारिस्थितिक–तंत्र में कीटनाशियों के अंतर्गत भी प्रयोग की गई कीटनाशी धूल का 10 से 20 प्रतिशत ही पौधों की सतहों पर पहुँचता है, जिसका एक प्रतिशत से भी कम भाग लक्ष्य कीट तक पहुँचता है। इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि कीटनाशियों के उपयोग के लिए प्रयुक्त की जाने वाली विधियों में पर्याप्त सुधार की संभावना है। साथ ही उनके लिए प्रयुक्त उपकरणों में भी सुधार की आवश्यकता है जिनके द्वारा उन्हें लक्ष्य तक

पहुँचाया जाता है। इससे कीटनाशियों की निवेशित मात्रा में अवश्य कमी आएगी तथा पर्यावरण प्रदूषण भी कम किया जा सकेगा।

पीड़कनाशियों के दीर्घस्थायित्व से होने वाले प्रदूषण से बचाव के लिए इनके विकल्प जैसे–जैविक नियंत्रण, कृषीय क्रियाओं द्वारा नियंत्रण, भौतिक या यांत्रिक उपायों को अपनाया जाना आवश्यक है। वानस्पतिक उत्पत्ति वाले कीटनाशियों जैसे निकोटीन, पाइरेथ्रिन, रोटेनोन, अजाडिरेक्टिन के इस्तेमाल को प्रोत्साहन देने की आवश्यकता है क्योंकि इनका जैव–विघटन आसानी से हो जाता है और ये कोई विषैले अवशेष भी नहीं छोड़ते। इस प्रकार पीड़कनाशियों द्वारा होने वाले प्रदूषण से बचा जा सकता है।

अध्याय – 9

वाहितमल तथा आपंक और मृदा प्रदूषण

आजकल शहरों के आसपास की भूमि पर जो खेती की जा रही है उसमें शहरों के नालों में बह रहे घरेलू तथा औद्योगिक अपशिष्टों से युक्त गंदे पानी (जिसे वाहितमल (सीवेज) कहा जाता है) से सिंचाई की जाती है। अब तक हुए शोधों से यह भली–भाँति ज्ञात हो चुका है कि वाहितमल व आपंक में नाइट्रोजन, फॉस्फोरस, कार्बनिक पदार्थ के अतिरिक्त कुछ भारी धातुएं भी पाई जाती हैं जो मृदा में एकत्रित होने पर मृदा के धात्विक प्रदूषण का कारण बनती हैं, साथ ही पौधों द्वारा ग्रहण किए जाने पर उनकी वृद्धि तथा उपज पर प्रतिकूल प्रभाव डालती है। इन धातुओं के पौधों व जीवों में संचित होने के परिणामस्वरूप इनके उपभोग से स्वास्थ्य संबंधी समस्याएं उत्पन्न होती हैं।

वाहितमल या बहिःस्राव की मात्रा अनेकानेक उद्योगों की स्थापना तथा अतिशय बढ़ती जनसंख्या के कारण निरंतर बढ़ती जा रही है। ऐसे बहिःस्रावों की इतनी विशाल मात्रा सामान्यतः शहरों के आसपास की बेकार पड़ी या कृष्य भूमि, गड्ढ़ों, त्यक्त क्षेत्रों या नदियों, नालों, तालाबों, झीलों या समुद्रों में बहा दी जाती है। कई स्थानों पर स्वेच्छा से वाहितमल आधारित कृषि भी की जाने लगी है।

विभिन्न प्रयोग यह दर्शाते हैं कि आपंक (स्लज) में अनेक अवाष्पशील जैवसंचयी कार्बनिक पदार्थ रहते हैं। इस एकत्रण को तभी स्वीकार–योग्य उपचार कहा जा सकता है, जब वह अपचयन या निपटान के अंतिम समय तक घुल नहीं जाता । अभी तक जैव पदार्थ के आपंक में गतिशीलता और अपघटन के बारे में बहुत कम जानकारी है, कुछ क्रियाए जैसे– पाचन, अनुकूलन, शुष्कन और ठोसीकरण आदि इन पदार्थों के स्थायित्व के लिए उत्तरदायी हो सकती है। आपंक के स्थायित्व के लिए सबसे अच्छा तरीका पाचन माना गया है। इस क्रिया में काफी लंबा समय लगता है तथा जैव अपघटन, वाष्पशील पदार्थों के कम होने और विषैले कार्बनिक पदार्थों के विघटन के लिए अधिक समय मिल जाता है।

आपंक (स्लज) और मृदा प्रदूषण

प्रायः सभी छोटे–बड़े शहरों तथा कस्बों में सफाई की वाहितमल पद्धति (सीवेज सिस्टम ऑफ सेनिटेशन) द्वारा मानव मलमूत्र और अन्य व्याज्य पदार्थों को बहाकर दूर किया जा सकता है। बहे हुए संपूर्ण पदार्थों को वाहितमल कहा जाता है। सामान्य रूप से वाहित मल के दो भाग होते हैं:

1. ठोस भाग– जो आपंक (स्लज) कहलाता है।
2. द्रव भाग– जिसे प्रायः वाहितमल (सीवेज) कहते हैं।

वाहितमल में 95 प्रतिशत जल तथा शेष अन्य पदार्थ होते हैं। चूँकि मल में कई प्रकार के उद्योगों से निकले (अपशिष्ट)पदार्थ भी मिलते रहते हैं अतः आपंक में भी इनकी मात्रा आ जाती है। आपंक में निम्न भारी धातुओं के होने की संभावना रहती है– कैडमियम, क्रोमियम, कॉपर, आयरन, मरकरी, मैंगनीज, मॉलिब्डेनम, निकैल, लैड और जिंक। इनमें से कोबाल्ट, कॉपर, आयरन, मैंगनीज, जिंक की सूक्ष्म मात्रा पौधों के लिए आवश्यक होती है

किंतु कैडमियम, मरकरी तथा लैड की सूक्ष्म मात्रा भी पशुओं या वनस्पतियों के लिए घातक होती है।

आपंक में पाए जाने वाले क्रोमियम, निकैल, कैडमियम, लैड, जिंक, मरकरी आदि भारी तत्व ही मृदा को प्रदूषित करने में प्रमुख भूमिका निभाते हैं। ये तत्व एक बार मिट्टी में प्रविष्ट होने पर सदा के लिए घातक बने रहते हैं। इनमें से क्रोमियम व जिंक को छोड़कर शेष सभी भारी तत्व अत्यधिक विषैले होते हैं। ये भारी तत्व अंकुरण से लेकर बीज–निर्माण तक की क्रिया को प्रभावित करते हैं और इनकी उपस्थिति में उगी हुई तरकारियों, फलों, अनाजों से स्वास्थ्य पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ सकता है।

अध्याय – 10

प्रदूषित मृदा और भूजल प्रदूषण

भू–जल एक प्रकृति प्रदत्त अमूल्य संसाधन है। प्राकृतिक रूप से रिसकर मृदा में समा जाने वाला जल तो अवमृदा में स्वतः ही सुरक्षित हो जाता है और भू–जल के रूप में उपलब्ध रहता है। विगत दशकों में भू–जल के दोहन पर बहुत जोर दिया गया है। भूमिगत पानी के अत्यधिक दोहन ने ही वास्तविक रूप में जल संकट को जन्म दिया है। तर्कसंगत तो यही है कि जमीन से उतना ही पानी निकाला जाना चाहिए जिसकी पूर्ति वर्षा के जल से हो सके। उससे अधिक पानी निकालने का अर्थ है कि भावी पीढ़ियों को पानी के अकाल की तरफ ले जाना। भू–जल की वर्षा के पानी द्वारा प्रतिपूर्ति के मार्ग में आज हमने कई कृत्रिम अवरोध पैदा कर दिए हैं। अधिकांश क्षेत्रों में वनों और वनस्पतियों का विनाश इसका एक प्रमुख कारण है।

अतिदोहन और जल–स्तर में गिरावट की समस्या के अतिरिक्त भू–जल की गुणवत्ता व प्रदूषण भी एक अन्य समस्या है। अतिदोहन के कारण होने वाली कमी की तुलना में इसकी भरपाई होना कहीं ज्यादा मुश्किल है। कृषि व अन्य क्षेत्रों के अकेंद्रित प्रदूषण स्रोत एवं केंद्रित प्रदूषण स्रोत मिलकर एक प्रमुख जलप्रबंधन की चुनौती प्रस्तुत करते हैं। इसका सबसे

अच्छा उदाहरण बांग्लादेश एवं पश्चिम बंगाल में भू–जल से पैदा होने वाली व्यापक आर्सेनिक विषाक्तता है। गंगा–मेघना–ब्रह्मपुत्र नदी तंत्र के जलोढ़ डेल्टाई अवसादन से प्राप्त भू–जल में आर्सेनिक के प्राकृतिक रूप से पाया जाता है।

नाइट्रोजन के सभी स्रोतों, चाहे कार्बनिक हों या अकार्बनिक, से नाइट्रेट निर्मुक्त होते हैं जो भूमिगत जल में निक्षालित होते हैं। नाइट्रेट के निक्षालन को घटाने के उद्देश्य से निम्न–निवेश पद्धतियों को अपनाने का वैज्ञानिक आधार कम है। मृदाओं में नाइट्रोजन–चक्र एक गतिक एवं सतत प्रक्रम है जो सघन फसलोत्पादन प्रारंभ होने के बहुत पहले से चल रहा है।

नाइट्रेट जल में जा सकता है, परंतु धनावेशित अमोनियम मृदा कणों द्वारा इसे रोक लिया जाता है और मृदा में उसका नीचे की ओर संचालन या निक्षालन संभव नहीं है। ऋण आवेशित नाइट्रेट, मृदा कणों द्वारा प्राकृतिक रूप से दूर ढकेल दिया जाता है और जल में संचलन के लिए स्वतंत्र होता है। किसी भी रूप में नाइट्रोजन दिया जाए मृदाओं में नाइट्रेट सदैव विद्यमान रहेगा क्योंकि जैविक पद्धतियाँ अपने पादपचक्रों के माध्यम से नाइट्रेट उत्पन्न करती हैं।

सभी मृदाओं में कुछ नाइट्रेट सदैव विद्यमान रहता है। नाइट्रोजन बाह्य स्रोतों के अलावा, मृदा के कार्बनिक पदार्थों के प्राकृतिक विघटन से अमोनियम आयन–मुक्त होते हैं जो बाद में नाइट्रेट में बदल जाते हैं। यह नाइट्रेट फसलों के लिए प्राप्य या उपलब्ध है परंतु नाइट्रोजन के बाह्य स्रोतों की नाइट्रोजन की भाँति ही इसका भी निक्षालन होता है। कृषि प्रारंभ होने के बहुत पहले का संचित कार्बनिक पदार्थ अब जहाँ पौधे उग रहे हैं, वहाँ की मृदाओं में मौजूद हैं। दलहनी फसलों की जड़ ग्रंथियों के सूक्ष्माणुओं तथा कुछ अन्य स्वतंत्र जीवों द्वारा पर्यावरण से अतिरिक्त नाइट्रोजन का यौगिकीकरण होता है।

दुर्भाग्यवश, व्यावसायिक उर्वरकों का प्रयोग प्रारंभ होने के पूर्वकाल में जल में विद्यमान नाइट्रेट स्तर प्राकृतिक कार्बनिक पदार्थों द्वारा मुक्त नाइट्रेट स्तरों के आधार पर समायोजित नहीं हैं, अतः बाह्य स्रोत, जैसे व्यावसायिक उर्वरक से आये हुए नाइट्रेट अंश का केवल अनुमान मात्र लगाना ही संभव है।

भूजल एक छिपा हुआ संसाधन है जिसके बारे में लोगों की समझ काफी कम है। लेकिन विभिन्न सामाजिक आर्थिक व पर्यावरणीय सेवाओं के लिए यह बहुत जरूरी है। प्रदूषण एवं जलस्तर में गिरावट भूजल पर निर्भर पर्यावरणीय, घरेलू, कृषकीय एवं औद्योगिक उपयोगों के लिए अस्तित्व का संकट बन सकती है। जैसे–जैसे भूजल की मांग बढ़ेगी और इसके दीर्घकालीन दोहन की सीमाएं स्पष्ट होने लगेंगी, भूजल के लिए कृषकों व दूसरे उपयोगकत्रओं के बीच प्रतिस्पर्धा तेजी से बढ़ती जाएगी। इससे लोगों में प्रतिस्पर्धात्मक दोहन की शुरूआत हो सकती है। प्रत्येक व्यक्ति भूजल संसाधनों के खत्म होने से पहले उससे लाभ प्राप्त करने के लिए जितना संभव होगा उतना भूजल निकालने लगेगा। इसके परिणाम भूजल की बढ़ती मांग और घटती उपलब्धता के परिणाम सामने आ सकते हैं। अतः भूजल के दीर्घकालीन प्रबंधन के लिए प्रतिस्पर्धा के महत्वपूर्ण सामाजिक मुद्दे का समाधान करना जरूरी है।

भूजल से संबद्ध उभरती व्यापक समस्याओं के बावजूद यह अभी भी अनिश्चित है कि भूजल उत्खनन और प्रदूषण की समस्या कितनी व्यापक है। ऐसे ब्लॉकों की संख्या से संबंधित सरकारी आंकड़े गुमराह करने वाले हो सकते हैं जहां पानी का दोहन उसके पुनर्भरण के बराबर है या उससे भी ज्यादा हो रहा है। ऐसा इसलिए कि सरकार द्वारा प्रकाशित दोहन और पुनर्भरण के आकलनों की विश्वसनीयता संदेह के घेरे में है।

इसके अलावा कुछ मामलों में जल स्तर की वे गणनाएं संदेहास्पद हैं जिन पर ये आकलन आधारित है।

प्रदूषण की व्यापकता के संबंध में भी अनिश्चय की स्थिति बनी हुई है। यह तो स्पष्ट है कि कृषि रसायनों के बढ़ते उपयोग, औद्योगिक कचरे एवं शहरी अवशिष्ट के कारण पिछले दशकों में प्रदूषण अत्यधिक मात्रा में बढ़ा हैं, फिर भी विभिन्न प्रदूषकों की व्यापकता एवं वितरण की जानकारी के लिए पर्याप्त आंकड़े उपलब्ध नहीं हैं। प्रायः भूजल की गुणवत्ता संबंधी समस्याओं की पहचान कोई दुर्घटना होने या इससे संबंधित तथ्यों के मिलने के बाद ही हो पाती है। आर्सेनिक विषाक्तता का प्रकरण इसका उदाहरण है। जब इस विषाक्तता के मामले व्यापक स्तर पर सामने आने लगे तभी इसे एक बड़ी समस्या के रूप में स्वीकार किया गया। गुणवत्ता और परिमाण संबंधी समस्याओं की व्याख्या करने में एक प्रमुख चुनौती संसाधन आधार और गतिशीलता को समझने की है कि बारिश के जरिए भूजल की तीव्रता से भरपाई हो जाती है और वह पृथ्वी के अंदर सरलता से बहता रहता है। साथ ही इसकी गुणवत्ता भी एक समान बनी रहती है। परंतु वास्तव में चट्टान निर्माण की जटिल प्रक्रिया और पुनर्भरण की भिन्न–भिन्न दरों के चलते भूजल की गतिशीलता कहीं ज्यादा पेचीदा होती है। प्रकारांतर से यह पेचीदगी संसाधनों की स्थिति की समझ को और ज्यादा जटिल बना देती है।

इसके परिणामस्वरूप भूजल का अतिदोहन खनिज तेल जैसे संसाधनों के निष्कर्षण जैसा हो जाता है जिनकी भरपाई नहीं हो सकती। तथ्यों के मिलने तक विशेषज्ञों को भी अपरिवर्तनीय समस्याओं की उत्पत्ति का पता लगाने में प्रायः कठिनाई होती है। इस प्रकार अनिश्चितताओं से निपटना भूजल प्रबंधन का एक मुख्य अंग है।

भू–जल का पुनर्भरण

भूजल के लिए होने वाली प्रतिस्पर्धा के समाधान के लिए तकनीकी विकल्प सीमित है। अधिकतर प्रकरणों में अतिदोहन से प्रभावित समूह तथा समुदाय भूजल भंडारों के पुनर्भरण की वकालत करते हैं। परंतु संपूर्ण भारत में इस विकल्प की व्यावहारिकता सीमित ही दिखती है। उदाहरण के लिए गुजरात के अधिकांश क्षेत्रों से संबंधित आकलन बताते हैं कि पुनर्भरण में वृद्धि अतिदोहन को मात्र 10 प्रतिशत तक कम कर पाती हैं, जबकि बहुत से अन्य क्षेत्रों में अप्रयुक्त सतही जल बहुत कम मात्रा में उपलब्ध भी है जिसका इस्तेमाल पुनर्भरण के लिए किया जा सकता है, और जहां जल उपलब्ध भी है वहां वर्षा का समय और वितरण जलभंडारों की पुनर्भरण क्षमता को सीमित कर देते हैं। पुनर्भरण एक धीमी प्रक्रिया है। इसकी गति का निर्धारण मिट्टी व उसके नीचे की संरचनाओं की जल अवशोषण की दर द्वारा तय होता है। इसके विपरीत वर्षा का स्वरूप प्रायः मौसमी होता है और यह थोड़े समय के लिए तेजी से होती है। इसलिए इसके बहुत कम भाग का भंडारण पुनर्भरण के लिए किया जा सकता है। जल भंडारों के पुनर्भरण की तकनीकी सीमाओं के अलावा भूजल संसाधनों के लिए होने वाली प्रतिस्पर्धा के निराकरण में निहित सामाजिक चुनौतियों को समझने के लिए तीन धारणाओं को समझना जरूरी है। ये हैं–

1. परस्पर निर्भरता

भूजल एक ऐसी कड़ी है जो कृषि, पर्यावरणीय व आर्थिक–तंत्रों को जोड़ती है और इनको कुछ जगहों पर परस्पर निर्भर बनाती है। उदाहरण के लिए पर्यावरणीय उपयोगिताएं, गरीबों के लिए पानी की उपलब्धता, सूखे के समय खाद्य सुरक्षा की स्थिति एवं विभिन्न फसलों की आर्थिक व्यावहारिकता – ये तमाम चीजें एक विशेष जलस्तर तथा भूजल गुणवत्ता पर निर्भर हो सकती हैं और

ये स्थितियां प्रायः जल के इस्तेमाल के तरीकों पर निर्भर करती हैं। जैसे कि अदक्ष सतही सिंचाई–तंत्र के रिसाव के कारण के होने वाला पुनर्भरण प्रायः उच्च भूजल स्तर को बनाए रखने में मददगार साबित होता है, और यह भूजल स्तर नदियों के आधार प्रवाह का निर्माण तथा गरीब समुदाय के लिए भूजल की उपलब्धता सुनिश्चित करता है।

2. कई भूजल सेवाओं का सार्वजनिक संपत्ति प्रकृति का होना

व्यक्तिगत स्तर पर उपभोक्ता भूजल की सिर्फ दोहन–आधारित उपयोगिता को ही प्राप्त कर सकते हैं, जैसे जमीन से पानी निकालना एवं किसी विशेष उद्देश्य के लिए उसका उपयोग करना। परंतु जब भूजल को जल भंडारों में ही रहने दिया जाता है तब दोहन आधारित उपयोगिताएं भूजल द्वारा प्रदत्त पर्यावरणीय सेवाओं, सूखे के लिए संरक्षित भंडार एवं अन्य सेवाओं को प्रदर्शित नहीं करती हैं। ये सभी सेवाएं सार्वजनिक संपत्ति होती हैं। उपभोक्ता व्यक्तिगत स्तर पर इनसे लाभ उठा सकते हैं, लेकिन उसकी स्थिति सभी उपभोक्ताओं की संयुक्त कार्यवाही पर निर्भर करती हैं। जल भंडारों के अतिदोहन या उसके प्रदूषण में अपनी भूमिका को नजरंदाज कर लोग बहुत आर्थिक लाभ उठाते हैं। लेकिन नुकसान यह होता है कि जब भूजल को जल बाजार में बेचा जाता है या मानक आर्थिक तकनीकों के द्वारा इसका मूल्यांकन किया जाता है तो इसको बहुत कम आंका जाता है।

3. स्तर

अधिकतर मामलों में भूजल का प्रबंधन स्थानीय स्तर पर नहीं किया जा सकता है। भूजल भंडारों का विस्तार क्षेत्र, दस से लेकर हजारों गांवों तक हो सकता है जिसके परिणामस्वरूप जल

भंडारों की गतिशीलता व्यक्तिगत या ग्राम स्तर पर होने वाली कार्यवाहियों के भूजल पर पड़ने वाले प्रभावों को सीमित कर देती है। जबकि दूसरी तरफ शासकीय एजेंसियों द्वारा लागू की जाने वाली प्रबंधकीय कार्यनीति को इस तरह ढालना कठिन होता है ताकि भूजल की परिस्थितियों व उपयोगों में स्थानीय या क्षेत्रीय स्तर पर होने वाले बदलावों को जाना जा सके।

अध्याय – 11

मृदा प्रदूषण के प्रभाव

मृदा प्रदूषण के प्रभावों का विवरण इस प्रकार है–

मृदा के भौतिक, रासायनिक एवं जैविक गुणों पर प्रभाव

मृदा के प्रदूषित हो जाने की स्थिति में मृदा के भौतिक, रासायनिक तथा जैविक गुणों में अवांछनीय परिवर्तन आ जाते हैं, जिसके परिणामस्वरूप मृदा की उर्वरता तथा उत्पादकता प्रभावित होती है।

मृदा के भौतिक गुणों पर प्रभाव

प्रदूषित मृदा की भौतिक, रासायनिक तथा जैविक दशाए खराब हो जाती हैं। जड़ों की विकास संबंधी जीवन क्रियाएं प्रभावित होती हैं। जड़ों का विकास न हो पाने तथा ऑक्सीजन की कमी हो जाने के कारण पौधे, पोषक तत्वों का अवशोषण ठीक से नहीं कर पाते। जलाक्रांत दशा में कुछ पोषक तत्वों की उपलब्धता भी कम हो जाती है।

मृदा के भौतिक गुण, मृदा के उपयोग तथा पादप वृद्धि के प्रति इसके व्यवहार को प्रभावित करते हैं। ये गुण पौधों की जड़ों को मृदा में प्रवेश कराने, जल निकास, वातन, नमी धारण आदि में सहायक होते हैं तथा पादप पोषकों की प्राप्यता भी मृदा की

भौतिक दशाओं से संबंधित होती है। मृदा के भौतिक गुण मृदा के रासायनिक एवं जैविक गुणों को भी प्रभावित करते हैं।

मृदा के प्रदूषित हो जाने पर उसकी भौतिक दशा खराब हो जाती है, अधिक क्षारीय मृदा में जल–प्रविष्टिता की दर काफी कम हो जाती है, जिसके फलस्वरूप वर्षा का अधिकांश जल बह जाता है। मृदा इसे सोख नहीं पाती। यही जल बाढ़ का कारण बनता है। मृदा लवणता और क्षारीयता के कारण पौधें जल और पोषक तत्वों का अवशोषण सही ढंग से नहीं कर पाते, जिसके कारण अच्छी उपज प्राप्त नहीं हो पाती है।

मृदा प्रदूषण का मृदा के भौतिक गुणों पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है वाहितमल और आपंक से मृदा के रंध्र अवरुद्ध हो जाने से मृदा वातन प्रभावित होता है। मृदा वातन के प्रभावित होने से पौधों की जड़ों का पर्याप्त विकास नहीं हो पाता। इसके अतिरिक्त वायवीय सूक्ष्मजीवों पर भी प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है।

मृदा के रासायनिक गुणों पर प्रभाव

मृदा के प्रदूषित हो जाने पर मृदा के रासायनिक गुणों पर भी प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। मृदा प्रदूषक मृदा के पर्यावरण को दीर्घकाल तक प्रदूषित किए रहते हैं जिससे आवश्यक रासायनिक क्रियायें सुचारु रूप से संपन्न हीं हो पाती। मृदा प्रदूषण का मृदा के पी.एच., विद्युत् चालकता, पोषक तत्वों की उपलब्धता, मृदा में कार्बनिक पदार्थ की मात्रा, मृदा की धनायन विनिमम क्षमता इत्यादि पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है।

मृदा को अम्लीय, क्षारीय या उदासीन, पी.एच., मान के आधार पर विभाजित किया जाता है। मृदा पी.एच. फसलों द्वारा मृदा से पोषक तत्वों व पानी के अवशोषण को प्रमुख रूप से प्रभावित करने वाला कारक है। खनिज मृदाओं का पी. एच. मान 3.5 से 10.5 के बीच और सामान्य मृदाओं का पी.एच. 7.0 के

आसपास होता है। जिस प्रकार विभिन्न मृदाओं का पी. एच.मान अलग–अलग होता है उसी प्रकार पौधों की पी.एच. आवश्यकताएं भी भिन्न–भिन्न होती हैं।

मृदा में नाइट्रोजन, फॉस्फोरस, पोटाश, सल्फर एवं अन्य सूक्ष्म पोषक तत्व जैसे जिंक, आयरन व मैंगनीज की स्थिति पी. एच. मान से प्रभावित होती है। मृदा में पोषक तत्वों की उपलब्धता पौधों के विकास व वृद्धि को सीधा प्रभावित करती है। फसलों में असंतुलित पोषण से मृदा में उपलब्ध पोषक तत्वों के लगातार दोहन से मृदा उर्वरता स्तर घटता जा रहा है।

यह मृदा की जलधारण क्षमता, मृदा ताप, लाभदायक जीवाणुओं की सक्रियता को बढ़ाने तथा मृदा उर्वरता को प्रभावित करने वाला, सबसे महत्वपूर्ण गुण है। मृदा में कार्बनिक पदार्थों की स्थिति का सीधा संबंध मृदा उर्वरता से होता है।

मृदा के प्रदूषित होने से मृदा की विद्युत् चालकता प्रभावित होती है। विद्युत् चालकता से हमें मृदा में विलेय कैल्सियम, मैग्नीशियम और सोडियम आदि धनायन तथा कार्बोनेट, बाइकार्बोनेट, सल्फेट व क्लोराइड जैसे ऋणायन लवणों की प्रकृति और मात्रा इत्यादि का ज्ञान होता है। इन लवणों की अधिक मात्रा का मृदा के भौतिक, रासायनिक व जैविक गुणों पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है।

मृदा के जैविक गुणों पर प्रभाव

प्रदूषित मृदा में न केवल मृदा वायु की कुल उपलब्ध मात्रा में कमी हो जाती है, अपितु उपलब्ध मृदा वायु में कार्बन डाई ऑक्साइड की मात्रा अधिक हो जाती है और ऑक्सीजन की मात्रा घट जाती है। ऑक्सीजन की कमी हो जाने से जहाँ एक ओर पौधों की जड़ों का विकास प्रभावित होता है वहीं दूसरी ओर वायवीय सूक्ष्म जीवों की ऊर्जा उत्पन्न करने की शक्ति क्षीण हो

जाती है। ऐसी दशा में न केवल सूक्ष्म जीवों की वृद्धि एवं विकास में अवरोध आता है बल्कि वे मर भी जाते हैं। ये सूक्ष्मजीव मृदा में पाए जाने वाले कार्बनिक यौगिकों का उपयोग करके ऊर्जा उत्पन्न करने में सक्षम होते हैं और वायवीय सूक्ष्म पोषक तत्वों का उपभोग विशेष कुशलता पूर्वक करते हैं। प्रदूषित दशा में रोग उत्पन्न करने वाले सूक्ष्मजीवों एवं पौधों की जड़ों के बीच ऑक्सीजन का उपयोग करने के लिए प्रतिस्पर्धा शुरू हो जाती है जिसके कारण पौधे सड़नकारी कवक रोग के प्रति विशेष संवेदनशील हो जाते हैं।

सूक्ष्मजीवों पर प्रभाव

जैविक और अजैविक क्रियाएं मृदा पर्यावरण में सूक्ष्मजीवों पर विषाक्तता को प्रभावित कर सकती है। मृदा में उपस्थित जैव पदार्थ, मृत्तिका खनिज, कीलेट बनाने वाले तत्व, सूक्ष्मजीवी उपापचय से उत्पन्न हाइड्रोजन सल्फाइड गैस विभिन्न प्रकार के आयन, मृदा का पी.एच. (PH) आदि कारक धातुओं की जैविक प्रभावोत्पादकता के लिए उत्तरदायी हैं। यह भी हो सकता है कि सूक्ष्मजीव अपने लिए रक्षात्मक कवच बनाकर भारी धातुओं की विषाक्तता से अपनी रक्षा करें। अनेक प्रयोगों से यह स्पष्ट हो चुका है कि मृदाओं में विशेषकर अम्लीय मृदाओं में, भारी धातुएं, खनिजीकरण, नाइट्रीकरण और सहजीवी नाइट्रोजन स्थिरीकरण पर विपरीत प्रभाव डालती है।

मनुष्य द्वारा जलाशयों में अपशिष्ट पदार्थ मिला देने से जल में उपस्थित पौधे तथा जीवाणु आदि के उपयोग की क्षमता से अधिक कार्बनिक तथा अकार्बनिक पदार्थ एकत्रित होने लगते है। जल में उपस्थित पदार्थों की अधिक मात्रा को अपघटित नहीं कर पाते हैं, जिससे इन पदार्थों की अतिरिक्त मात्रा जल की तली में बैठती जाती है तथा जलाशय को उथला एवं गंदा बनाती

है। उसका जलीय पादपों एवं जीवों पर विपरीत प्रभाव पड़ता है।

मानव स्वास्थ्य पर प्रभाव

स्वास्थ्य मनुष्य की एक अनिवार्य आवश्यकता है, किंतु आज विश्व के विकासशील एवं अविकसित देशों की यह ज्वलंत समस्या है। निरंतर बढ़ती जनसंख्या एवं शहरीकरण के परिणामस्वरूप अपशिष्ट / पदार्थों की मात्रा में लगातार वृद्धि हो रही है। इन अपशिष्टों में अनेक विषैली भारी धातुएं भी विद्यमान होती हैं, जो अनेक रोगों एवं बीमारियों का कारण बनती है। यद्यपि प्रकृति ने इसके स्वतः निस्तारण की व्यवस्था प्रदान की है, लेकिन यह प्रक्रिया अत्यंत धीमी होने के कारण अधिक आबादी की स्थिति में कारगर नहीं है। दूसरी ओर पृथ्वी के पारिस्थितिकी तंत्र के असंतुलित होने से मानव आबादी के विशाल परिदृश्य ने अपशिष्ट निस्तारण का संतुलन बिगाड़ दिया है।

भारी धातुएं मनुष्यों तथा अन्य जीवों के लिए निम्नलिखित पाँच कारणों से हानिकारक हैं–

1. इनकी जल में विलेयता नगण्य है, जिससे ये मृदा में तेजी से गति नहीं कर सकते अर्थात् संचित होते रहते हैं।

2. ये जीवाण्वीय विघटन के प्रतिरोधी होने से मृदा में दीर्घकाल तक बने रह सकते हैं।

3. ये वसा विलेय होते हैं तथा ऊतकों में संचित होते हैं।

4. ये वनस्पतियों से खाद्य–शृंखला में स्थानांतरित हो सकते हैं।

5. ये स्तनधारियों के लिए विषैले होते हैं। इनमें से बहुत से कैन्सरधारी या उत्परिवर्तीक भी हो सकते हैं।

औद्योगिक प्रगति के फलस्वरूप वायु, जल और मृदा में उद्योगों से बहिस्रावित विभिन्न रसायन मिल रहे हैं। कृषि में

प्रयोग होने वाले उर्वरक रसायनों तथा कीटनाशियों का 50 प्रतिशत से अधिक भाग जल स्रोतों में ही गिरता है। इन रसायनों की विषाक्तता इतनी अधिक है कि अति सूक्ष्म मात्रा में भी इनकी जल, वायु या मृदा में उपस्थिति अनेक शारीरिक विकृतियों, रोगों एवं बीमारियों का कारक हो सकती है।

आजकल शहरों के निकटवर्ती भू–भाग पर सब्जियों की खेती बहुतायत से की जा रही है। इन सब्जियों की फसलों की सिंचाई हेतु प्रायः शहरों की नालियों में बहने वाले गंदे जल(वाहित मल) (सीवेज) का ही प्रयोग किया जाता है।

इन धातुओं का औद्योगिक महत्व होने के नाते रोज नए–नए कारखानों की स्थापना हो रही है फलतः प्रतिदिन अपशिष्ट के रूप में इन धातुओं का ढेर सा लग जाता है और पर्यावरण में इन धातुओं का प्रचुर अंश विष रूप में मिलता रहता है। इन अपशिष्टों के हवा, नदी–नालों तथा मिट्टी आदि में पहुँचने से जल तथा मिट्टी के धात्विक प्रदूषण की समस्या उत्पन्न हो जाती है। जल, वायु, मिट्टी ही नहीं अपितु इससे अब खाद्य सामग्री भी प्रदूषित होने लगी है।

पचास के दशक में जब से जापान मे मिनीमाता विकृति के लिए पानी में पारे की उपस्थिति तथा इताई–इताई व्याधि के लिए कैडमियम की उपस्थिति को उत्तरदायी पाया गया है, तब से इस प्रकार के रसायनों व उनकी संदिग्धता पर अनुसंधान कार्य का सिलसिला प्रारंभ हो चुका है। पारा, कैडमियम, क्रोमियम, सीसा इत्यादि भारी धातुओं की विषाक्तता से उत्पन्न विकृतियों, रोगों एवं बीमारियों की अनेक अध्ययनों द्वारा पुष्टि हो चुकी है। आर्सेनिक की विषाक्तता उसके रासायनिक स्वरूप पर निर्भर करती है। आर्सेनिक के त्रिसंयोजी स्वरूप में सर्वाधिक विषाक्तता होती है। अतः आर्सेनाइट के रूप में उपस्थित आर्सेनिक के सभी

अकार्बनिक लवण अत्यधिक विषैले होते हैं। इस प्रकार के आर्सेनिक युक्त जल (0.1 से 1.0 मिग्रा/लिटर) के निरंतर सेवन से लोगों में गंभीर त्वचीय विकृतियां पाई गई हैं। पूर्वी भारत (पश्चिम बंगाल), बंगलादेश तथा ताईवान इत्यादि क्षेत्रों में सामान्य पेयजल में उपस्थित आर्सेनिक की 2.5 मिग्रा/लिटर के निरंतर सेवन से ब्लैकफुट रोग देखने को मिली है। आर्सेनिकयुक्त जल के सेवन से आंत्रीय, यकृतीय तथा स्नायुतंत्रीय विकृतियों के अनेक प्रमाण मिले हैं।

क्रोमियम के षष्टसंयोजी (क्रोमियम–VI) यौगिक सर्वाधिक विषैले हैं, साधारण तथा प्राकृतिक जलों में क्रोमियम– नहीं पाया जाता। परंतु औद्योगिक प्रदूषण अधिक होने से यह पानी में उपस्थित रह सकता है। क्रोमियम आँतों तथा गुर्दे की कोशिकाओं में विकृतियाँ पैदा करने के लिए उत्तरदायी हैं, क्रोमियमयुक्त जल का लंबे अंतराल तक सेवन प्राणघाती हो सकता है। प्राकृतिक जलों में क्रोमियम का प्रवेश मुख्यतः चमड़ा शोधक कारखानों के बहिःस्राव के मिलने से होता है।

औद्योगिक बहिःस्राव के जलाशयों में मिलने से विशेषतः क्लोरीन तथा सोडियम हाइड्रॉक्साइड बनाने वाली इकाइयों से पारा नदियों व जलाशयों को प्रदूषित कर रहा है। जल में एक विशेष प्रकार के शैवालों द्वारा यह मेथिल मरकरी में परिवर्तित कर दिया जाता है जो कि शैवालभक्षी मछलियों में संचयित होकर मछली खाने वाले लोगों के शरीर में पहुँच जाता है। जापान में इस प्रकार मछलियों के माध्यम से उनमें उपस्थित मेथिल मरकरी के द्वारा अनेक मौतों का विवरण मिलता है। इराक में डाइफेनिल मरकरी से उपचारित गेहूँ के बीजों के पानी में बहाए जाने के फलस्वरूप पारे द्वारा प्रदूषण से भी अनेक मौतों की सूचना मिली है।

बढ़ते औद्योगिक प्रदूषण के कारण बेरीलियम एक महत्वपूर्ण प्रदूषण–कारक तत्व बन चुका है। इसकी सूक्ष्मतम मात्रा भी स्तनपायी जीवों में धीरे–धीरे स्थायी रूप से उनके शरीर में स्थापित हो जाती है। तंतुओं में उसकी सूक्ष्म मात्रा के जमा होने से खाँसी, जुकाम, हृदय पीड़ा तथा हृदय संबंधी अनेक व्याधियां शरीर में हो सकती है।

आधुनिक उद्योग में सेलेनियम एक महत्वपूर्ण धातु के रूप में उभर चुका है। इसी कारण प्राकृतिक जलों में इसकी उपस्थिति दर्ज की गई है। जल के माध्यम से सेलेनियम का लगातार शरीर में प्रवेश त्वचीय तथा स्नायुतंत्रीय विकृतियां पैदा कर सकता है।

यद्यपि सीसे से तत्काल विषाक्तता की घटनाएं बहुत कम हैं परंतु सूक्ष्म मात्रा से (1 मिग्रा./लिटर) कई गंभीर बीमारियों होने के प्रमाण मिले हैं। सीसे की प्रवृत्ति संचयी विष की है। यह जैविक तंतुओं में संचयित होता जाता है तथा एक स्थिति ऐसी आती है कि शरीर के महत्वपूर्ण अंग अपने कार्यों को सक्षमता से नहीं कर पाते तथा धीरे–धीरे क्षीण होने लगते हैं। सीसा मुख्यतः गुर्दे, यकृत तथा मस्तिष्क की कोशिकाओं को अधिक क्षति पहुँचाता है। सीसा हड्डियों में संचित होकर उन्हें नष्ट होने के कारण उसका भूमि पर जमाव व वर्षा के माध्यम से उसका, जल समुदायों की ओर बहाव सीसे की जल में व्यापकता का प्रमुख कारण है। असंगठित बैटरी उद्योग से भी जल समुदायों में सीसे का रिसाव तथा भारी होने के कारण उसका भूमि पर जमाव व वर्षा के माध्यम से उसका, जल समुदायों की ओर बहाव, सीसे की, जल में व्यापकता का प्रमुख कारण है। असंगठित बैटरी उद्योग से भी जल समुदायों में सीसे का रिसाव जल में सीसे की उपस्थिति का प्रमुख कारक बनता जा रहा है।

लैड या सीसा एक संचयी विष है। दैनिक मात्रा थोड़ी होने पर भी लंबे समय में सीसे का काफी संचय हो जाता है। यह पात्रों, मिट्टी और पानी के पाइपों सें पर्यावरण में आता है। अनुमान है कि प्रतिदिन भोजन के द्वारा मनुष्य को 0.2–0.25 मि.ग्रा. सीसा मिलता है। जल के माध्यम से प्रतिलिटर 0.1 मि.ग्रा. सीसा शरीर के भीतर पहुँचता है। मृदु तथा अम्लीय जल में यह मात्रा अधिक हो सकती है। 1977 में आंध्रप्रदेश के गुंटूर जिले के मलप्पाडु नामक ग्राम के मवेशी इस बीमारी से ग्रसित हुए थे। मवेशियों को यह बीमारी सीसा मिले रसायनों सें प्रदूषित जल पीने के कारण हुई थी। हुआ यह था कि उपर्युक्त ग्राम के निकट की नदी में एक रासायनिक कारखाने द्वारा उक्त रसायन छोड़ दिए जाते थे और मवेशी इस नदी का जल पिया करते थे, फलतः कई पशुओं की जानें चली गईं।

सीसे की विषाक्तता से उल्टी, अरक्तता, गठिया आदि रोग हो जाते हैं। प्राचीन रोम के वासी सीसा से कलई किए गए बर्तनों का अधिक उपयोग करते थे, इसके कारण उनके शरीर में सीसे की इतनी अधिक विषाक्तता हो गयी थी कि कम आयु में ही उनकी मृत्यु हो जाती थी।

धातु प्रदूषण का पता लगाना मॉनीटरन द्वारा संभव है, किंतु मॉनीटरन के लिए बहुत सारे नमूनों का परीक्षण आवश्यक होता है, जो बहुत खर्चीला तथा समय लेने वाला है। यही कारण है कि जब कोई शिकायत आती है, तभी परीक्षण किया जाता है, किंतु पूर्व सूचना जल्दी से जल्दी तैयार की जानी चाहिए।

कुछ पौधे भारी धातुओं के प्रति संवेदनशील होते हैं, जिन्हें सूचकों की तरह प्रयुक्त किया जा सकता है। ये साधन सस्ते हैं तथा स्थानीय रूप सें विशेष लाभप्रद हैं।

वाहितमल जल को कृत्रिम जलाशयों में रोककर उसमें शैवालों और जलकुंभी जैसे जलीय पौधों को उगाया जाए जो

इस वाहितमल जल का कुछ हद तक शुद्धीकरण हो सकता है। कारखानों द्वारा निकलने वाले वाहितमल जल में कैडमियम, पारा, निकैल जैसी भारी धातुओं को जलकुंभी अवशोषित कर लेती है। एक हेक्टेयर क्षेत्रफल में उगाई गई जलकुंभी 240,000 लिटर दूषित जल से 24 घंटे में लगभग 300 ग्राम निकैल तथा कैडमियम अवशोषित कर लेती है। जलकुंभी द्वारा परिशोधित जल का पी.एच.मान. (ph मान) 6.8 से 9.8 तक हो जाता है। इसी प्रकार यदि मल युक्त ठोस पदार्थ (स्लज) को चूर्ण शैल फास्फेट के साथ प्रयोग किया जाए तो भूमि तथा पौधे में इन विषैली धातुओं को एकत्रित होने से रोका जा सकता है।

सारणी– पेयजल में भारी धातुओं की अधिकतम अनुमेय सांद्रता

भारी धातु	अधिकतम अनुमेय सांद्रता मिग्रा / लिटर
मरकरी	0.001
कैडमियम	0.01
सेलीनियम	0.01
आर्सेनिक	0.05
क्रोमियम	0.05
कॉपर	0.05
मैंगनीज	0.05
लैड (सीसा)	0.1
आयरन	0.1
जिंक	5.0

सारणी– भारी धातुओं का मनुष्यों पर प्रभाव

भारी धातु	मनुष्यों पर शारीरिक प्रभाव
कैडमियम	मिचली, दस्त, हृदय रोग
लैड (सीसा)	गंभीर संचयी तथा उग्र शरीर विष
मरकरी	मस्तिष्क तथा केंदीय तंत्रिका तंत्र को क्षति
आर्सेनिक	100 मिग्रा. से उग्र शारीरिक प्रभाव
क्रोमियम	साँस के साथ जाने पर कैन्सर उत्पादक
सेलीनियम	बाल झड़ जाते हैं तथा त्वचीय परिवर्तन

सारणी– विभिन्न धातुओं के लिए सूचक पौधे

सूचक पौधा	धातु
स्लस्पी अल्पेस्ट्रो	जिंक
मिनुएर्टिया वर्ना	लैड
पियर्सोनिया मेटेलीफेरा	क्रोमियम
मिनुएर्टिया वर्ना	कैडमियम
ट्रेकीपेागोन स्पिकेटस	कॉपर

कैडमियम प्रदूषित मृदा में फॉस्फोरस का अधिक प्रयोग लाभकारी पाया गया है। फॉस्फेट, कैडमियम को अचल बना कर मृदा विलयन में कैडमियम की मात्रा को कम करता है जिससे पौधों द्वारा इसके उद्ग्रहण में कमी आती है।

कार्बनिक पदार्थ की उपस्थिति में फॉस्फोरसयुक्त कार्बनिक पदार्थ एवं उर्वरकों की विलेयता बढ़ती है। कार्बनिक पदार्थ एवं फॉस्फोरसयुक्त उर्वरक की उपस्थिति में विषैली भारी धातुओं का उद्ग्रहण पौधों में कम होता है क्योंकि कार्बनिक पदार्थ भारी धातुओं के साथ जटिल यौगिक बनाते हैं।

इस प्रकार स्पष्ट है कि ये भारी धातुएं कितनी अधिक विषैली हैं। शहरी गंदे जल (सीवेज–स्लज) से सीचीं गयी मिट्टियों में उपजने वाली फसलों में भारी धातुओं की उच्च मात्रायें पाई जा सकती हैं। अतएव पौधे तथा फसलें कम से कम भारी धातुएं ग्रहण करें, इस दिशा में शोध की आवश्यकता बनी हुई है।

अध्याय – 12

मृदा प्रदूषण : नियंत्रण एवं प्रबंधन

मृदा पर्यावरण का एक ऐसा घटक है जो सभी प्रकार के प्रदूषणों को अपने में समाहित करती रहती है। अतः पर्यावरण प्रदूषण को रोकने वाला कोई भी प्रयास मृदा प्रदूषण को रोकने में सहायक होगा। तात्पर्य यह है कि यदि पर्यावरण स्वच्छ हो तो मृदा भी स्वच्छ रहेगी। कितना अच्छा हो यदि मृदा को प्रदूषित ही न होने दिया जाए। यह मृदा के सीमित उपयोग से ही संभव है। यदि स्थानीय रूप से मृदा प्रदूषित हो जाए तो उसके तुरंत उपचार की आवश्यकता है।

मृदा और जल दो महत्वपूर्ण प्राकृतिक संसाधन हैं जिन पर किसी भी देश की कृषि निर्भर करती है। मृदा एवं जल प्रबंधन के प्रभावी उपायों को अपनाकर निरंतर बढ़ती हुई जनसंख्या के भरण–पोषण की चुनौती से निपटा जा सकता है।

हमारी मृदा, जल तथा वायु, निरंतर प्रदूषित होते जा रहे हैं। भौतिक रासायनिक तथा जैविक दशाएं बिगड़ती जा रही हैं। सघन खेती एवं रासायनिक उर्वरकों के अत्यधिक प्रयोग से पर्यावरण पर प्रतिकूल असर पड़ रहा है। मृदा की उर्वरा शक्ति कम हो रही है जिसके परिणामस्वरूप पर्याप्त उत्पादन नहीं मिल पा रहा है।

जैविक खादों का प्रयोग

वर्तमान परिवेश को देखते हुए मृदा को प्रदूषित होने से बचाना अत्यंत आवश्यक है जिससे मृदा की उर्वरा शक्ति का नुकसान न हो सके। इसके लिए फसलों में प्रयोग किए जाने वाले रासायनिक उर्वरक के अनुचित व असंतुलित मात्रा में बिना सूझ–बूझ के प्रयोग में कमी लाने की आवश्यकता है अन्यथा मृदा में उपस्थित लाभकारी जीवाणु ओर जीव–जंतु विलुप्त हो जाएंगे और इनकी उपस्थिति में मृदा में होने वाली विभिन्न अपघटन तथा विघटन इत्यादि क्रियाओं पर प्रतिकूल असर पड़ेगा जिससे पोषक तत्वों एवं खनिज लवणों का बहुत बड़ा हिस्सा पौधों को प्राप्त नहीं हो सकेगा। साथ ही रासायनिक उर्वरकों की बढ़ती कीमतों व उनके कम उत्पादन होने की वजह से लघु व सीमांत किसान बुरी तरह से प्रभावित होंगे। अतः फसलों की अच्छी गुणवत्ता की अधिक पैदावार लेने के लिए तथा जमीन के उपाजाऊपन को बनाए रखने के लिए रासायनिक उर्वरकों का संतुलित प्रयोग आवश्यक है। इसके लिए खेती में रासायनिक उर्वरकों के साथ–साथ पौधों को पोषक तत्व प्रदान करने वाले अन्य स्रोतों (जैविक खादों) के प्रयोग की आवश्यकता है।

उपचारित वाहितमल (सीवेज) का प्रयोग

विश्व के मृदा वैज्ञानिक मृदा को प्रदूषण से मुक्त रखने के लिये निरंतर प्रयोग करते रहे हैं। वाहितमल से होने वाले प्रदूषण को कम करने के लिए भूमि पर बहाने से पूर्व इसका तनूकरण अनिवार्य है। सीवेज की 1:1000 तक की तनुता मृदा तथा पौधों के लिए सुरक्षित रहती है। वाहितमल जितनी ही अधिक दूरी से आता है, उसमें पाये जाने वाले प्रदूषकों की मात्रा भी क्रमशः घटती जाती है। मुख्य रूप से जैव–रासायनिक ऑक्सीजन माँग (बी.ओ.डी.) की मात्रा घटकर 2. मिलीग्राम प्रति लिटर के लगभग

हो जाती है अर्थात् बी.ओ.डी. की मात्रा काफी घट जाती है जिससे सिंचाई हेतु जल की गुणवत्ता सुधर जाती है। वाहितमल में उपस्थित नाइट्रोजन व फास्फोरस की मात्रा, पादप विषाक्तता, बी.ओ.डी. जैव विच्छेदनशीलता, भारी तत्व, विषैले कार्बनिक यौगिक लोडिंग रेट को प्रभावित करते हैं। 1000 मिलीग्राम प्रति लिटर या इससे कम बी.ओ.डी. वाले वाहितमल जल के लिए हाइड्रोलिक लोडिंग रेट भूमि उपचार के लिये उपयुक्त है।

वाहितमल के उपचार के साथ–साथ औद्योगिक व्यर्थ पदार्थों का भी उपचार किया जाना आवश्यक है। अम्लीय वर्षा वाले क्षेत्रों में चूने का प्रयोग करना चाहिए। कार्बनिक पदार्थ अन्यत्र डाले जाने चाहिए। उर्वरकों की मात्रा घटा देनी चाहिए।

यदि दूषित मलजल को नदियों.आदि जलस्रोतों में गिरने से पूर्व कृत्रिम जलाशयों मे एक रोक का उसमें शैवालो और जलकुभी जैसे जलीय पौधों को उगाया जाए तो दूषित जल का शुद्धीकरण किया जा.सकता है। कारखानों द्वारा निकलने वाले दूषित जल में कैडमियम, पारा, निकैल जैसे भारी तत्वों की मात्राओं को जलकुंभी अवशोषित कर लेती है। एक हैक्टेयर क्षेत्र में उगाई गई जलकुंभी 240,000 लिटर दूषित जल से 24 घंटे में लगभग 300 ग्राम निकैल तथा कैडमियम अवशोषित कर लेती है तथा 72 घंटे में लगभग 1.60 कि.ग्रा. फिनॉल अवशोषित करती है। जलकुंभी द्वारा परिशोधित जल का पी.एच.मान. (ph मान) 6.3 से 9.8 तक हो जाता है। इसी प्रकार यदि आपंक को चूर्ण शैल फास्फेट के साथ प्रयोग किया जाए तो भूमि तथा पौधे में भारी तत्वों के एकत्रित होने को रोका जा सकता है। इस दिशा में नागपुर स्थित राष्ट्रीय पर्यावरण अभियांत्रिकी संस्थान (नीरी) में महत्वपूर्ण शोध कार्य चल रहा है। निम्नीकरण की क्रिया मृदा को प्रदूषण युक्त रखने में काफी सहायक होती है। इसमें ऑक्सीकरण–अपचयन,

खनिजीकरण, स्थिरीकरण, कार्बनिक अवयवों का निर्माण, जटिल क्रियाएं आदि शामिल हैं। प्रत्येक क्रिया को भली प्रकार सम्पादित होने के लिए उपयुक्त वातावरण होना चाहिए जैसे कि मृदा नमी, मृदा–ताप, मृदा–वायु अनुकूल रहे।

यह देखा गया है कि यद्यपि सीसे के कारण पत्तीदार फसलों की वृद्धि एवं भार पर कोई बुरा प्रभाव नहीं पड़ता तथापि उनके द्वारा अवशोषित सीसा की मात्रा काफी बढ़ जाती है। वस्तुतः चाहे कैडमियम हो या सीसा या क्रोमियम–इनकी अवशोषित मात्राएं सब्जियों के अनुसार घटती बढ़ती हैं। इसलिये हर फसल के लिए यह मात्रा जिसके ऊपर घातक सिद्ध हो ज्ञात की जानी चाहिए, तब इनको खाने के काम मे लाना चाहिए।

इसी तरह प्रत्येक स्रोत के मल–जल का विश्लेषण आवश्यक है। इन भारी धातुओं के अतिरिक्त भी मल–जल के एक गुण बी. ओ.डी. के निर्धारण की आवश्यकता है। मल–जल में जितनी ही गंदगी होगी, मिट्टी के संपर्क में आने पर वह अपने विघटन के लिए मिट्टी से उतनी ही अधिक ऑक्सीजन ग्रहण करेगी। अतएव मृदा के वायुमंडल में ऑक्सीजन की कमी हो सकती है जिससे बीजों के अंकुरण से लेकर अन्य क्रियाएं एवं कुछ सूक्ष्मजीवी क्रियाएं यथा–नाइट्रीकरण आदि लुप्त हो जाएंगी। जल में कितना ठोस पदार्थ है यह भी जानना आवश्यक है। इसे 'लोडिंग' कहते हैं। लगातार सिंचाई करते रहने से मिट्टी में काफी गहराई तक विषैले तत्वों का संचय हो जाता है।

औद्योगिक अपशिष्ट हो या मल–जल या अवमल–इनके निपटान की विधियों पर विदेशों में कार्य चल रहा है। हमें भी अपने देश में दीर्घकालीन प्रयोग वाले मॉडल तैयार करने होंगे।

कैल्सियम, फॉस्फेट, जिंक के यौगिकों तथा जिप्सम का प्रयोग

मृदा प्रदूषण से बचने या प्रदूषण कम करने के लिये कुछ अन्य उपाय सुझाए गए हें– जैसे कूड़ा करकट को जला देना, उसकी कंपोस्ट बनाना, बायोगैस बनाना, पशु–चारा बनाना आदि। मृदा वैज्ञानिकों की दृष्टि में मृदा में जैव–अंश की मात्रा बढ़ाकर जीवनाशी विषालुता नियंत्रित की जा सकती है। इसी प्रकार अंलीय मृदाओं में चूने का प्रयोग करके नाभिकीय विघटन उत्पाद (Sr go) के अवशोषण को रोका जा सकता है।

अम्लीय मृदा में चूने की मात्रा का निर्धारण उसके पी.एच. मान (ph मान) के आधार पर किया जाता है। इसके साथ ही मृदा की किस्म और सामान्य अनुभव का भी ध्यान रखना चाहिए। सारणी–12.1 में मृदा के पी.एच.मान (ph मान) और मृदा की किस्म के अनुसार मृदा का पी.एच. 6.5 तक बढ़ाने के लिए चूने की मात्रा दी गई है। यह मात्रा जुती भूमि (0–15 से.मी.) के पी. एच. को ठीक करने के लिए है।

सारणी– भूमि की किस्म व पी.एच. मान (ph मान)के अनुसार चूने की मात्रा

भूमि की किस्म	देश के गर्म और आर्द्र मैदानी भाग में चूने की मात्रा प्रति हेक्टेयर (टनों में)		
	4.0 pH	4.5 pH	5.5 pH
बलुई और मटियार बलुई	3.75	2.5	1.25
बलुई मटियार	–	5.0	2.5
बलुई दोमट	–	8.7	5.0
मटियार दोमट	–	12.5	7.4

यदि चूना पत्थर के स्थान पर जलयोजित चूना (कैल्सियम हाइड्रॉक्साइड) मिलाना हो तो उपरोक्त चूने की तीन चौथाई मात्रा ही पर्याप्त होगी।

अम्लीय मृदा में चूना मिलाने का सर्वोत्तम समय वर्षा के प्रारंभिक दिन हैं। इन दिनों चूना खेत में डालने पर पर्याप्त कमी के कारण अच्छी तरह से मिल जाता है और मृदा में आवश्यक रासायनिक परिवर्तन होते रहते हैं।

सारणी– जिप्सम की आवश्यकता (टन प्रति हेक्टेयर)

मृदा का pH मान	मृदा का प्रकार		
	बलुई दोमट	दोमट	चिकनी दोमट
9.2	1.7	2.5	3.4
9.4	3.4	5.0	6.5
9.6	5.1	7.5	10.0
9.8	6.8	10.0	14.6
10.0	8.5	12.5	15.0
10.2	10.0	15.0	15.0

मृदा सुधारक के साथ ही गोबर की खाद, कंपोस्ट, यूरिया, अमोनिया, सल्फेट और जिंक सल्फेट का इस्तेमाल अवश्य करना चाहिए ताकि पोषक तत्वों के अभाव के कारण पौधे मर न सकें।

उर्वरकों का संतुलित एवं सक्षम प्रयोग

रासायनिक उर्वरकों के अनुचित और असंतुलित प्रयोग ने हरित–क्रांति की सफलता पर प्रश्न चिह्न लगा दिया है। कभी हरित–क्रांति आवश्यक थी परंतु रासायनिक उर्वरकों का उपयोग इतना अधिक हो गया है कि अब इसके दुष्परिणाम स्पष्ट दिख रहे हैं। देश के अनेक कृषि क्षेत्रों में पौधों के लिए तीन मुख्य

पोषक तत्वों नाइट्रोन, फॉस्फोरस व पोटाश का प्रयोग असंतुलित अनुपात मे किया जा रहा है। किसी–किसी क्षेत्रों में तो यह अनुपात 9:2:1 है। जबकि अनाज वाली फसलों में आदर्श अनुपात 4:2:1, दाल वाली फसलों में 1:2:1 तथा सब्जी वाली फसलों में यह अनुपात 2:1:1 होना चाहिए। स्वस्थ जीवन के लिए हम सबको स्वच्छ वायु, जल, भोजन, चारा, ईंधन, आवास और प्रदूषण मुक्त पर्यावरण की आवश्यकता है। ये आवश्यकताएं कहीं न कहीं आधुनिक खेती से जुड़ी हुई हैं। बढ़ते शहरीकरण, आधुनिकीकरण, औद्योगिकीकरण और रासायनिक उर्वरकों के अत्यधिक व असंतुलित प्रयोग से उपजाऊ भूमि बंजर भूमि मे तब्दील हो रही है जिसके परिणामस्वरूप पारिस्थितिक असंतुलन की स्थिति पैदा हो गई है।

खेती में रासायनिक उर्वरकों के असंतुलित प्रयोग से होने वाले दुष्परिणामों को निम्न तरीकों को अपनाकर कम किया जा सकता है:–

1. खेत की मिट्टी की जाँच के आधार पर ही रासायनिक उर्वरकों की मात्राएं सुनिश्चित करें।

2. भरपूर पैदावार के लिए पर्ण वर्ण संचित्र (लीफ कलर चार्ट) तकनीक द्वारा फसलों में उर्वरकों की संस्तुति की जानी चाहिए। इस तकनीक का मूलभूत सिद्धांत यह है कि पत्तियों का हरापन जितना ज्यादा होगा, उतना ही उर्वरकों की कम आवश्यकता पड़ती है। चार्ट में दिये गये अंकों के आधार पर उर्वरकों की मात्रा और उनके प्रयोग का सही समय तय किया जाता है।

3. फसल उत्पादों की अच्छी गुणवत्ता और अधिक पैदावार लेने के लिए गोबर की खाद, मुर्गी खाद, वर्मी कंपोस्ट, हरी खाद, फसल अवशेषों का प्रयोग, फसल चक्र में दलहनी फसलों का

समायोजन और अन्य जैविक खादों का प्रयोग भी रासायनिक उर्वरकों के साथ अपेक्षित है। इससे पौधों को मुख्य, गौण व सूक्ष्म पोषक तत्व पर्याप्त तत्व पर्याप्त मात्रा में और लंबी अवधि तक मिलते रहते हैं। प्रयोगों द्वारा यह भी पाया गया कि रासायनिक उर्वरकों को जैविक खादों के साथ प्रयोग करने पर उर्वरकों की उपयोग दक्षता भी अधिक हो जाती है।

4. इसके अतिरिक्त खेती में रासायनिक उर्वरकों के साथ–साथ जैवउर्वरकों जैसे– एजोटोबैक्टर, राइजोबियम, नील हरित शैवाल, आजोला, एजोस्पिरिलम, फॉस्फोबैक्टीरिया व माइकोराइजा का प्रयोग भी लाभदायक रहता है। जैविक उर्वरकों के प्रयोग से विभिन्न फसलों की उपज में 15–25 प्रतिशत की वृद्धि हो सकती है।

प्रदूषित मृदा में सहिष्णु फसलें उगानी चाहिए।

सहिष्णु फसलें उगाना

सारणी– लवणों के प्रति फसलों की सहनशीलता

सहनशील (विद्युत् चालकता 12 डेसी साइमंस / मी. तक)	कम सहनशील (विद्युत् चालकता 6 डेसी साइमंस / मी. तक)	असहनशील (विद्युत् चालकता 41 / 5 डेसी साइमंस / मी. तक)
जौ	गेहूँ	लोबिया
चुकंदर	मोठ	चना
पालक	धान	मटर
तोरिया	ज्वार	मूँगफली
कपास	मक्का	ग्वार
	सूरजमुखी	तिल
	आलू	
	मूँग	

एकीकृत पोषक तत्व प्रबंधन

निरंतर सघन खेती अपनाने, रासायनिक उर्वरकों पर अति निर्भरता तथा कार्बनिक खादों की सतत उपेक्षा के कारण भूमि की उर्वरा शक्ति व कार्बनिक अंश में कमी आ गई है तथा मृदा के

भौतिक, रासायनिक तथा जैविक गुणों पर भी इसका दुष्प्रभाव पड़ा है। इसके परिणामस्वरूप रासायनिक उर्वरकों के अत्यधिक उपयोग के बावजूद फसलोत्पादन में कमी अनुभव की जा रही है। कृषि उत्पादन की एक टिकाऊ व्यवस्था बनाए रखने के लिए रासायनिक उर्वरकों पर निर्भरता कम करते हुए पौधों के लिए आवश्यक पोषक तत्वों की आपूर्ति के अन्य विकल्पों को पोषक तत्व प्रबंधन में सम्मिलित करने की आवश्यकता है।

फसलें मृदा से पोषक तत्वों का उद्ग्रहण करती रहती हैं। यदि मिट्टी से पोषक तत्व निकलते रहें और उनकी आपूर्ति न की जाए तो मिट्टी की उर्वरता का ह्रास अवश्यम्भावी है। मृदा की उर्वरता को उसमें उपस्थित पोषक तत्वों की मात्रा भौतिक, रासायनिक तथा उसके जैविक गुण प्रभावित करते हैं। यदि किसी पोषक तत्व की मृदा में कमी हो जाती है तो उस पर उगने वाले पौधों का जीवन–चक्र पूरा नहीं हो पाता है। पौधे पोषक तत्वों की न्यूनता तथा विषाक्तता दोनों से प्रभावित होते हैं तथा उपज घट जाती है।

मृदा स्वास्थ्य के समुचित ज्ञान के अभाव में फसलों की पोषक तत्वीय आवश्यकता के अनुरूप उर्वरकों व खादों का प्रयोग न होने के कारण मृदा की उत्पादकता पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ रहा है। अपने खेत को उपजाऊ बनाने एवं उसकी क्षमता का सही अनुमान लगाने हेतु मृदा परीक्षण करना अत्यंत आवश्यक होता है। मृदा परीक्षण द्वारा पौधों के लिए पोषक तत्वों का समुचित प्रबंधन करने में सहायता मिलती है। मृदा परीक्षण द्वारा मृदा की उर्वरता का स्तर निश्चित किया जाता है। मृदा परीक्षण से प्राप्त परिणामों के आधार पर मृदा के लिए आवश्यक पोषक तत्वों हेतु उर्वरकों की संस्तुति फसलानुसार की जाती है।

पौधों के स्वस्थ विकास एवं पोषण के लिए मुख्य रूप से सत्रह तत्वों की आवश्यकता होती है जिनमें पौधे वायु एवं जल से एवं ऑक्सीजन से कार्बन, हाइड्रोजन ग्रहण करते हैं, शेष चौदह तत्वों को पौधे मृदा से ग्रहण करते हैं। सारणी–1 में इन पोषक तत्वों का विवरण दर्शाया गया है।

सारणी 1:– पौधों के लिए आवश्यक प्रमुख पोषक तत्व

कार्बन	नाइट्रोजन	कैल्सियम	आयरन मैंगनीज
हाइड्रोजन	फास्फोरस	मैग्नीशियम	कॉपर, जिंक, बोरॉन
ऑक्सीजन	पोटैशियम	सल्फर	मोलिब्डिनम
			क्लोरीन, निकैल

इनमें से नाइट्रोजन, फॉस्फोरस पोटाश प्रमुख तत्व हैं। पौधों की वृद्धि एवं विकास के लिए इन तत्वों की अधिक मात्रा में आवश्यकता होती है तथा कैल्शियम, मैग्नीशियम एवं सल्फर द्वितीयक अथवा गौण पोषक तत्व हैं। प्रमुख पोषक तत्वों की अपेक्षा इन तत्वों की कम मात्रा में आवश्यकता होती है। आयरन मैग्नीशियम कॉपर, जिंक, बोरॉन, मोलिब्डिनम, क्लोरीन तथा निकैल ये सूक्ष्ममात्रिक पोषक तत्व हैं जिनकी पौधों को कम मात्रा मे आवश्यकता होती है परंतु उत्पादन क्षमता को ये तत्व भी उतना ही प्रभावित करते हैं जितने अन्य तत्व।

हमारे देश में पोषक तत्वों की आवश्यकता इतनी अधिक है कि कोई भी अकेला स्रोत चाहे वह रासायनिक उर्वरक हो, जैव उर्वरक, हरी खाद या कंपोस्ट हो, उसकी पूर्ति नहीं कर सकता। अतः मृदा स्वास्थ्य को बनाए रखने हेतु एकीकृत/समेकित पोषक तत्व प्रबंधन ही एकमात्र विकल्प है।

एकीकृत पोषक तत्व प्रबंधन के प्रमुख उद्देश्य

एकीकृत पोषक तत्व–प्रबंधन के प्रमुख उद्देश्य निम्नलिखित हैं:–

1. उर्वरकों की उपयोग क्षमता में वृद्धि करना,
2. फसलों की उत्पादकता को बढ़ाना,
3. मृदा उर्वरता को बढ़ाना एवं उसे बरकरार रखना,
4. किसानों की सामाजिक तथा आर्थिक दशा में बदलाव लाना, तथा
5. पर्यावरण को प्रदूषित होने से बचाना।

एकीकृत पोषक तत्व प्रबंधन के प्रमुख घटक

एकीकृत पोषक तत्व प्रबंधन के प्रमुख घटक इस प्रकार हैं:–

1. कार्बनिक खादें
2. हरी खाद
3. फसल अवशेषों को मृदा में मिलाना
4. जैव उर्वरक
5. फसल चक्र
6. संतुलित उर्वरक उपयोग

1. कार्बनिक खादें

समेकित पोषक तत्व प्रबंधन में कार्बनिक खादों जैसे– गोबर की खाद, विभिन्न प्रकार के कंपोस्ट, जैव उर्वरक, वर्मीकंपोस्ट, तिलहन फसलों की खलियाँ इत्यादि का उपयोग करके रासायनिक उर्वरकों की मात्रा को कम किया जा सकता है। कार्बनिक खादों का उपयोग करने पर मृदा जीवाशं पदार्थ की मात्रा में वृद्धि होती है तथा मृदा स्वास्थ्य ठीक रहता है। कार्बनिक खादों के प्रयोग से मृदा pH मान ठीक रहता है जिससे अधिकांश फसलों को अनुकूल

परिस्थिति मिलती है। मृदा के पोषक तत्व उपलब्ध हो जाते है। उर्वरकों की उपयोग दक्षता में वृद्धि होती है। मृदा क्षरण में कमी आती है तथा फसलों की उच्च उत्पादन क्षमता के साथ टिकाऊपन आता है। केचुओं से बनी कंपोस्ट को वर्मीकंपोस्ट कहते है। केचुओं के द्वारा विभिन्न प्रकार के अपशिष्ट पदार्थों, जैसे फसल अवशेष, घास–फूस, घर का कूड़ा–करकट, गोबर आदि को खा लेने के बाद केंचुए द्वारा विसर्जित पदार्थ वर्मीकंपोस्ट कहलाता है। वर्मीकंपोस्ट में केचुओं की क्षिप्ति कास्ट, उनके अवशेष, मल एवं अंडे कोकून, लाभकारी मुख्य व सूक्ष्म पोषक तत्व, सूक्ष्म जीवाणु और उचित जैविक पदार्थो का मिश्रण सम्मिलित है जो मृदा को लंबे समय तक उपजाऊ एवं उपयोगी रखने की क्षमता रखते हैं। वर्मीकंपोस्ट में पोषक तत्वों के अलावा एंजाइम तथा पौधों की वृद्धि हेतु उपयोगी हार्मोन की उपस्थिति के कारण इसे साधारण कंपोस्ट से उन्नत माना गया है। अच्छे प्रकार से तैयार वर्मीकंपोस्ट में मुख्य पोषक तत्व नाइट्रोजन, फॉस्फोरस व पोटाश के साथ–साथ सूक्ष्म पोषक तत्व जैसे ऑयरन, कॉपर, मैंगनीज आदि पाये जाते है जिससे पौधों को विकास भली भाँति होता है। सारणी– 2 में वर्मीकंपोस्ट एवं गोबर की खाद में पोषक तत्वों की तुलना दर्शाई गई है। सारणी–3 में तिलहनी खलियों में पाए जाने वाले मुख्य पोषक तत्वों की मात्रा दर्शायी गई है।

सारणी– 2 वर्मीकंपोस्ट व गोबर की खाद में पोषक तत्वों की तुलना

पोषक तत्व (%)	वर्मीकंपोस्ट	गोबर की खाद
नाइट्रोजन	1.6	0.5
फॉस्फोरस	0.7	0.2
पोटाश	0.8	0.5
कैल्सियम	0.5	0.9
मैग्नीशियम	0.2	0.2
कार्बन–नाइट्रोजन अनुपात	15.2	20

सारणी– 3 तिलहनी खलियों में पाए जाने वाले प्रमुख पोषक तत्वों की मात्रा

कार्बनिक खादें	पोषक तत्व (प्रतिशत में)		
	नाइट्रोजन	नाइट्रोजन	पोटाश
अरंडी की खली	4.3	1.8	1.3
नीम की खली	5.4	1.1	1.5
करंज की खली	4.0	0.9	1.3
मूंगफली की खली	7.0	1.3	1.5
सरसों की खली	4.8	2.0	1.3
तिल की खली	6.2	2.0	1.2
बिनौले की खली	6.4	2.9	2.2
महुआ की खली	2.5	0.8	1.8
हड्डी का चूरा	1.5	25.0	–
मछली की खाल	4.0	3.0	0.3

2. हरी खाद

एकीकृत पोषक तत्व प्रबंधन में हरी खाद का विशेष योगदान है। हरे पौधे अथवा उनके भागों को जब मृदा की नाइट्रोजन व जीवांश की मात्रा को बढ़ाने के लिए खेत में दबाया जाता हे, तो यह हरी खाद के लिए मुख्यतः सनई, ढैंचा, मूँग, लोबिया, ग्वार आदि फसलों का प्रयोग किया जाता है। ढैंचा एक अच्छी हरी खाद की फसल है जो प्रतिकूल परिस्थितियों में भी अच्छी पैदावार देती है। यह लगभग 40–50 दिनों में खेत में दबाने लायक हो जाती है। हरी खाद से मृदा में कार्बनिक पदार्थ की मात्रा में वृद्धि होती है जिससे सूक्ष्म जीवों की सक्रियता बढ़ जाती है तथा नाइट्रोजन और सल्फर की उपलब्धता बढ़ती है। मृदा की संरचना, जल धारण क्षमता तथा धनायन विनियम क्षमता में वृद्धि होती है।

3. फसलों अवशेषों को मृदा में मिलाना

फसलों के अवशेष जैसे गेहूँ का भूसा, धान की पुआल एवं छिलका, कपास और अरहर की छंटियाँ, गन्ने की पत्तियाँ, प्रैसमड, मोलेसिस (शीरा), पेड़ों की पत्तियाँ, खरपतवार के पौधे, बाजरा/ज्वार/मक्की की कड़वी आदि को भूमि में वापस पहुँचाकर उपलब्ध मुख्य पोषक तत्वों जैसे नाइट्रोजन, फॉस्फोरस, पोटाश एवं सूक्ष्म तत्व तथा कार्बनिक पदार्थ आदि का पूर्ण दक्षता के साथ अधिक उत्पादन ले सकते हैं। आमतौर पर किसान फसल अवशेषों को खेत में जला देते हैं जिससे इनमें उपलब्ध पोषक तत्व नष्ट हो जाते हैं व पर्यावरण भी प्रदूषित होता है। अतः किसान फसल अवशेषों का कृषि में सदुपयोग कर मृदा में पोषक तत्वों की उपलब्ध मात्रा में वृद्धि कर सकते हैं। फसल अवशेषों में उपलब्ध पोषक तत्वों का विवरण सारणी–4 में दिया गया है।

सारणी–4 फसल अवशेषों में उपलब्ध पोषक तत्व

फसल अवशेष	पोषक तत्व (प्रतिशत में)		
	नाइट्रोजन	फॉस्फोरस	पोटाश
धान	0.58	0.23	1.66
गेहूँ	0.49	0.25	1.28
ज्वार	0.40	0.23	2.17
बाजरा	0.65	0.75	2.50
मक्का	0.59	0.31	1.31
अरहर	1.10	0.58	1.28
चना	1.19	—	1.28
अन्य दालें	1.60	0.15	2.00
गन्ना	0.35	0.04	0.50

4. जैव उर्वरक

एकीकृत पोषक तत्वों का एक अन्य महत्वपूर्ण घटक जैव उर्वरक हैं। जैव उर्वरक प्रकृति पाए जाने वाले ऐसे सूक्ष्मजीवों का समूह है जो वायुमंडल में उपस्थित नाइट्रोजन एवं फॉस्फोरस उपलब्ध कराते है तथा फसलों की पैदावार में वृद्धि करते हैं। इसके अतिरिक्त जैव उर्वरकों में मौजूद सूक्ष्मजीव कई प्रकार के स्राव भी स्रावित करते हैं जिनमें एन्जाइम, विटामिन, हॉरमोन तथा कई प्रकार के वृद्धि नियामक पदार्थ होते हैं जो बीजों की अंकुरण क्षमता एवं पौधों के विकास में सहायक होते है और इनमें कवक रोगों के प्रति सहनशीलता भी बढ़ जाती है। सारणी 5, 6 व 7 में विभिन्न प्रकार के जैव उर्वरकों से संबंधित विवरण दिया गया है।

सारणी– 5 नाइट्रोजन उपलब्ध कराने वाले सूक्ष्मजीव

क्र.सं.	फॉस्फोरस	पोटाश
1	एजोटोबैक्टर	5 से 10
2	एजोस्पाइरिलम	25 से 30
3	नीलहरित शैवाल	25 से 30
4	राइजोबियम	50 से 100
5	आजोला	100

सारणी–6 विभिन्न दलहनी फसलों के लिए उपयुक्त राइजोबियम जीवाणुओं की प्रजातियां

फसल वर्ग	राइजोबियम की जातियां	परपोषी फसलें
रिजका	राइजोबियम मेलीलोटी	रिजका, मेथी, सैन्जी
बरसीम	राइजोबियम	बरसीम
मटर	राइजोबियम लेगुमिनोसेरम	मटर, मसूर
फेजिओलस	राइजोबियम फेजिओला	राजमा, मोठ, सेम
सोयाबीन	राइजोबियम	सोयाबीन
ल्यूपिन	राइजोबियम ल्यूपिनी	ल्यूपिन
लोबिया	राइजोबियम अनामित	लोबिया, मूंगफली, उरद, चना, अरहर आदि।

सारणी–7 प्रमुख फॉस्फोरस विलेयकारी सूक्ष्मजीव

सूक्ष्मजीव	प्रमुख जातियां
जीवाणु	स्यूडोमोनास स्ट्रेइटा, बैसिलस पोलिमिक्सा, बैसिलस मेगाटेरियम, व बेसिलस सबटिलिस आदि।
कवक	एस्परजिलस अवामोरी, एस्पेरजिलस नाइगर आदि।

5. फसल चक्र अपनाना

एकीकृत पोषक तत्व प्रबंधन में फसल चक्र की विशेष भूमिका है। फसल चक्र किसानों द्वारा प्रयोग में लाई जाने वाली ऐसी प्रक्रिया है जिससे मृदा में उपस्थित पोषक तत्वों का पूर्ण रूप से उपयोग किया जा सकता है। यदि एक ही फसल को बार–बार एक ही खेत में लिया जाता है तो उस खेत की मृदा में कुछ पोषक तत्वों की कमी हो जाती है। ये वे पोषक तत्व हैं जिनकी आवश्यकता उस फसल को सर्वाधिक होती हैं। अतः पोषक तत्वों की कमी न होने देने के लिए उचित फसल चक्र अपनाना चाहिए। खाद्यान्नों के चक्र के बीच में दलहन की फसल उगाने से खेत की उर्वरा शक्ति काफी अच्छी रहती है।

6. संतुलित उर्वरक प्रयोग

फसलों द्वारा पोषक तत्वों की उपयोग क्षमता को बढ़ाने के लिए संतुलित उर्वरक प्रयोग बहुत आवश्यक है। समुचित मात्रा में उर्वरकों के प्रयोग के लिए तथा उनकी उपयोग क्षमता बढ़ाने के लिए यह जानना बहुत जरूरी है कि मृदा में पोषक तत्वों की मात्रा क्या है और फसलों को किन–किन तत्वों की कितनी आवश्यकता

है। यदि मृदा में नाइट्रोजन की कमी है तो फॉस्फोरस, पोटाश या किसी भी अन्य पोषक तत्व की कितनी भी मात्रा डालने से उसका समुचित उपयोग नहीं होगा क्योंकि किसी भी एक तत्व की उपलब्धता तथा उसका उपयोग अन्य पोषक तत्वों की भी मात्रा पर निर्भर करता है। इसी प्रकार फॉस्फोरस की मृदा में कमी होने से नाइट्रोजन व पोटाश का समुचित उपयोग नहीं हो सकता। अतः मृदा में किसी एक तत्व की कमी को दूसरे तत्वों से पूरा नहीं किया जा सकता है। किस फसल में कितनी मात्रा किस पोषक तत्व की दी जाए, यह इस बात पर निर्भर करता है कि फसल कौन–सी है और किस प्रयोजन के लिए उगाई गई है।

रासायनिक उर्वरक वर्तमान सघन खेती पद्धति में एकीकृत पोषक तत्व प्रबंधन का एक महत्वपूर्ण घटक है। भारत में ही नहीं अपितु संपूर्ण विश्व में 50 प्रतिशत बढ़ोतरी केवल रासायनिक उर्वरकों के प्रयोग से हुई है। लेकिन फसलों द्वारा उर्वरकों की उपयोग क्षमता लगभग 50 प्रतिशत या इससे भी कम है तथा शेष मात्रा विभिन्न प्रकार की हानि प्रक्रियाओं द्वारा नष्ट हो जाती है। आजकल उच्च विश्लेषण उर्वरकों जैसे– यूरिया, डाई अमोनियम फॉस्फेट और म्यूरेट ऑफ पोटाश का प्रचलन अधिक बढ़ गया है जो केवल नाइट्रोजन, फॉस्फोरस एवं पोटाश के अलावा अन्य पोषक तत्वों को प्रदान नहीं करते हैं, जबकि पारंपरिक निम्न विश्लेषण उर्वरकों के प्रयोग से फसलों को गौण तथा अन्य सूक्ष्म पोषक तत्व प्राप्त होते रहते हैं। उच्च विश्लेषण उर्वरकों के लगातार प्रयोग से मिट्टी में गौण तथा सूक्ष्म पोषक तत्वों की कमी आ रही है। भारत में 47 प्रतिशत मृदाओं में जस्ता, 11.5 प्रतिशत में लोहा, 4.8 प्रतिशत में तांबा तथा 4 प्रतिशत मृदाओं में मैंगनीज की कमी है जिनका प्रभाव फसलों की उपज पर भी पड़ रहा है।

दलहन, तिलहन तथा अधिक उपज देने वाली फसलों में गंधक का प्रयोग जरुरी हो गया है। भारतीय मृदाओं में कार्बनिक खादों की सर्वत्र कमी है कार्बनिक खादें, जैसे गोबर की खाद तथा कंपोस्ट, मृदा उर्वरता बनाए रखने, उत्पादन को स्थिर रखने एवं पोषक तत्वों का सही परिणाम प्राप्त करने के लिए आवश्यक है। कार्बनिक खादें वर्तमान फसल को तो लाभ पहुँचाती ही हैं साथ ही साथ दूसरी फसल को भी अवशेष प्रभाव द्वारा लाभ पहुँचाती है। एक टन गोबर की खाद से लगभग 12 कि.ग्रा. पोषक तत्व (नाइट्रोजन, फॉस्फोरस तथा पोटाश) प्राप्त होते हैं तथा 3.6 कि. ग्रा. उर्वरक तत्वों के बराबर अनाज पैदा करती हैं। खरीफ की फसलों में गोबर की खाद के प्रयोग से उत्पादकता में बगैर हानि पहुंचाए उर्वरक प्रयोग में कटौती की जा सकती है। रासायनिक उर्वरकों की माँग को कम करने के लिए उपलब्ध अवशिष्ट पदार्थों को कार्बनिक स्रोत के रूप में प्रयुक्त किया जा सकता है।

उर्वरकों का सर्वोत्तम उपयोग तभी हो सकता है जब इन्हें कार्बेनिक खाद के साथ भूमि में डाला जाए। हमारे देश में कार्बेनिक खाद के उपयोग की बड़ी संभावनाएं हैं। कार्बेनिक खाद से पोषक तत्वों की आपूर्ति के अतिरिक्त भूमि की भौतिक, रासायनिक एवं जैविक दशाओं में सुधार लाकर फसलों की उत्पादकता को बढ़ाया जा सकता है। कार्बनिक खाद को रासायनिक उर्वरकों के साथ देने से रासायनिक उर्वरकों की उपलब्धता में धीमापन आता है और वे पौधों को धीरे–धीरे प्राप्त होते हैं। अतः फसल की आवश्यक नाइट्रोजन की आधी मात्रा कार्बनिक खादों से तथा आधी मात्रा रासायनिक उर्वरकों से दी जाए तो फसल पर अच्छा प्रभाव पड़ेगा क्योंकि फसल को रासायनिक उर्वरकों द्वारा शीघ्र तथा अधिक मात्रा में पोषक तत्व उपलब्ध हो जाते हैं। इसके

अतिरिक्त मिट्टी के द्वारा जो भी पोषक तत्व पानी में अत्यधिक घुलनशील होते हैं, उसके रिसाव को भी बचाया जा सकता है।

मृदा में होने वाले पोषक तत्वों के नुकसान की भरपाई उन्नत पोषक तत्व प्रबंध विधियों, दक्ष फसल चक्र प्रणाली, जैव–उर्वरक, अच्छी कंपोस्ट एवं फसल चक्र में दलहनी फसलों के समावेश के द्वारा संभव है। चूंकि बढ़ा हुआ कृषि उत्पादन मुख्यतः वर्तमान कृषि योग्य भूमि से ही आएगा, अतएव कृषि उत्पादन बढ़ाने एवं मृदा उर्वरता टिकाऊ रखने के लिए उर्वरक एवं कार्बनिक पदार्थों का लगातार संतुलित मात्रा में प्रयोग जरूरी है। दीर्घकालीन उर्वरक प्रयोग परीक्षणों से ज्ञात हुआ है कि जहाँ पर नाइट्रोजन, फॉस्फोरस, पोटाश एवं गोबर की खाद, का संयुक्त रूप से प्रयोग किया गया वहाँ गोबर की खाद के प्रयोग से फसलोत्पादन में 20 प्रतिशत तक वृद्धि हुई।

इस प्रकार सार–रूप में यह कहा जा सकता है कि रासायनिक उर्वरकों के साथ–साथ जैविक खादों, हरी खाद, कंपोस्ट, वर्मीकंपोस्ट, जैव उर्वरकों के समन्वित प्रयोग से मिट्टी की उर्वरा शक्ति को दीर्घकाल तक कायम रखा जा सकता है और अधिकतम फसलोत्पादन प्राप्त किया जा सकता है।

एकीकृत पीड़कनाशी प्रबंधन

फसलों से अधिक उत्पादन प्राप्त करने के लिए जहाँ एक ओर हमने उन्नत किस्मों और कृषि के आधुनिक तरीकों को अपनाया वहीं दूसरी ओर रासायनिक उर्वरकों एवं पीडकनाशी रसायनों का भी अत्यधिक इस्तेमाल किया क्योंकि फसलों में पीडकनाशी से होने वाली हानि भी बहुत अधिक है। इन रसायनों के अत्यधिक इस्तेमाल के कारण गंभीर पर्यावरणीय समस्याएं उत्पन्न हो रही हैं। कीटों में कीटनाशी रसायनों के प्रति प्रतिरोधक

क्षमता पैदा होने से बहुत से कीट, रसायन की साधारण मात्रा से मरते नहीं हैं, अतः किसान रसायन की अधिक से अधिक मात्रा का उपयोग करते हैं। वर्तमान में अनेक कीटों की जातियों में विभिन्न रासायनिक दवाओं के प्रति प्रतिरोधक क्षमता विकसित हो गई है। अधिक तीव्रता के रसायन उपयोग करने से अन्य दूसरे जीवों एवं लाभकारी कीटों पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ते हैं। परजीवी एवं परभक्षी कीट हानिकारक कीटों पर अपना जीवन–चक्र पूरा करते हैं तथा हानिकारक कीटों की रोकथाम करने में कारगर सिद्ध हुए हैं, लेकिन कीटनाशी रसायनों की अधिक मात्रा इस्तेमाल करने से उन पर भी विपरीत प्रभाव पड़ता है।

रशेल कार्सन ने अपनी प्रसिद्ध पुस्तक "साइलेन्ट स्प्रिंग" में कीटनाशियों के बिना सोचे–समझे, अंधा–धुंध प्रयोग के बारे में विस्तार से वर्णन किया है। उन्होंने बताया कि कीटनाशियों का इतनी लापरवाही से प्रयोग किया गया है कि वास्तविक हानिकारक कीटों के अतिरिक्त अन्य जीवों को भी नष्ट कर दिया गया जिसका परिणाम यह हुआ कि कीटों का जैविक नियंत्रण प्रभावित हुआ और कीटों में रासायनिक कीटनाशियों के लिए प्रतिरोध उत्पन्न हो गया। कीट पुनः बड़ी संख्या में उत्पन्न हुए और द्वितीयक हानिकारक कीट उत्पन्न हो गए और पर्यावरण प्रदूषण की समस्या उत्पन्न हो गई।

जीवजगत् में पौधभक्षी कीट 26 प्रतिशत एवं शिकारी, परजीवी, परागकर्मी तथा सफाई कर्मी कीट 31 प्रतिशत हैं, पौधभक्षी अथवा पीडकनाशी की केवल 1 प्रतिशत जातियाँ ही क्षति पहुँचाती है। विश्व में मात्र 3500 कीटों की जातियों ही नाशीकीट के रूप में पहचानी गई हैं, हमारे देश में कीटों की लगभग 1000 जातियाँ ही फसलों एवं फसल उत्पादन को खेतों में अथवा भंडारण में क्षति पहुँचाते हैं।

कीटों में वृद्धि एवं विकास हेतु तीन या चार अवस्थाएं पाई जाती हैं। ऐसे कीट जिनमें तीन अवस्थाएं पाई जाती हैं, प्रायः निम्फ (शिशु अर्थक) एवं प्रौढ क्षति पहुँचाते हैं, लेकिन जिसमें चार अवस्थाएं पाई जाती हैं प्रायः सूंड़ी ही फसलों को नुकसान पहुँचाती हैं। प्यूपा इन कीटों में सुषुप्तावस्था में रहती है। प्रौढ़ प्रायः फूलों से पराग एवं मकरंद ही खाती हैं।

पर्यावरण में कीटों का उन्मूलन भी न हो और न ही कीटनाशियों का अविवेकपूर्ण प्रयोग हो, इसके लिए प्रबंधन की एक विधि का नहीं अपितु अनेक उपायों का समुचित प्रयोग होना चाहिए। यही समेकित कीट प्रबंधन कहा जाता है, इसमें आर्थिक, पारिस्थितिक तथा सामाजिक मूल्यों को ध्यान में रखकर ऐसा प्रबंधन किया जाता है कि हानिकारक कीटों की संख्या तथा हानि का स्तर इस प्रकार रखा जाता है कि वह आर्थिक सीमास्तर से नीचा रहे।

जब पीडकनाशी समस्या के प्रबंधन के बारे में सोचा जाता है तब दो मौलिक प्रश्नों के जवाब जरूर होने चाहिए, प्रथम– क्या कोई कार्यवाही करना आवश्यक है, दूसरे यदि आवश्यक है तो क्या कार्यवाही की जानी चाहिए। आमतौर से कीट नियंत्रण की साधारण सोच में इन सवालों पर ध्यान नहीं दिया जाता तथा बिना परिस्थिति–विशेष का विस्तृत मूल्यांकन किए एवं बिना बाहरी प्रभाव को ध्यान में रखते हुए अधिक से अधिक पीडकनाशी को मारने का प्रयास किया जाता है। जबकि समेकित पीडकनाशी प्रबंधन कार्यक्रम में पीडकनाशी से संबंधित विभिन्न कारकों का क्रमबद्ध मूल्यांकन करके, योजना बनाकर प्रबंधन करने के निर्णय लिये जाते हैं। विशेष रूप से समेकित पीडकनाशी प्रबंधन के तीन मुख्य उद्देश्य होते हैं–

- लाभ को बनाए रखना
- विभिन्न प्रबंध युक्तियों से पीडकनाशी की संख्या को कम से कम रहने देना
- पर्यावरण की सुरक्षा करना

समेकित कीट प्रबंधन का प्रादुर्भाव 1950 के दशक में हुआ। सर्वप्रथम वर्टलेट ने 1956 में समेकित पीडकनीशी नियंत्रण शब्द का प्रयोग किया जैविक नियंत्रण के साथ–साथ रासायनिक नियंत्रण की दलील दी। इसके पश्चात् गियर एवं क्लार्क ने 1961 में सभी उपलब्ध या संभव तकनीकों को पीडकनाशी नियंत्रण में समेकित रूप में अपनाने की वकालत की और यह भी कहा कि केवल जैविक व रासायनिक नियंत्रण पर ही निर्भर न रहा जाए। इन लोगों ने यह भी कहा कि ऐसी विधि जिसकी उपयोगिता दिखाई पड़े उसे प्रयोग कर पीडकनाशी की संख्या का प्रबंध करना चाहिए।

"समेकित पीडकनाशी प्रबंध एक बहुआयामी एवं क्रमशः विकासशील तंत्र हैं, जिसमें सभी उपयुक्त नियंत्रण युक्तियों, उपलब्ध निगरानीजनक प्रक्रिया एवं सतर्क रहने वाली सूचनाओं को इस तरह से संश्लेषित किया गया हो कि एक उपयुक्त प्रबंधन कार्यक्रम किसानों को समय–समय पर उपलब्ध कराया जाए जो टिकाऊ फसल उत्पादन तकनीक हो।" समेकित पीडकनाशी प्रबंधन एक प्रकार से एक रक्तहीन क्रांति है जिसमें 'जियो एवं जीने दो' का दर्शन ही प्रमुख है। समेकित पीडकनाशी प्रबंधन में वानस्पतिक उत्पत्ति वाले रसायन, सूक्ष्मजीवों द्वारा उत्पन्न रसायन कृषिगत अथवा पारिस्थितिकीय नियंत्रण, यांत्रिक एवं भौतिक नियंत्रण, फेरोमोन उत्पन्न रसायन कृषिगत अथवा पारिस्थितिकीय नियंत्रण, यांत्रिक एवं भौतिक नियंत्रण, फैरोमोन का प्रयोग इत्यादि सम्मिलित है।

वानस्पतिक कीटनाशी

वानस्पतिक कीट विष पौधे के सभी भागों जैसे– जड़ पत्ती, तना, फूल एवं बीजों से प्राप्त होते हैं, वर्तमान मे समेकित कीट प्रबंधन में वानस्पतिक कीटविषों के प्रयोग पर विशेष बल दिया जा रहा है। इनमें तंबाकू से प्राप्त निकोटीन, क्राइसेन्थमम में फूलों से प्राप्त पाइरेथ्रम नीम से प्राप्त ऐजाडीरेक्टिन प्रमुख हैं।

प्राकृतिक रूप से उपस्थित पौधों के रसायन कीटों के व्यवहार तथा कार्यिकी को प्रभावित करते हैं, इसलिए कीटों में इन रसायनों के लिए प्रतिरोध उत्पन्न होना आसान नहीं होता। पौधों से प्राप्त कीटनाशी बिना किसी को क्षति पहुँचाए आसानी से अपने अवयवों में विघटित हो जाते हैं।

कीटों की संख्या को बढ़ने से रोकने वाले सक्रिय रसायन (वानस्पतिक कीटनाशी) बहुत सारे पौधों में भरपूर मात्रा में पाए जाते हैं। ये पादप उत्पाद वह द्वितीयक उपापचयज है जो कीटों की मौलिक, क्रियात्मक व जैव रासायनिक प्रक्रिया को प्रभावित करते हैं एवं ये आसानी से क्षरित होते हैं। पौधों की 2121 प्रजातियों में कीट नियंत्रण पौध–उत्पाद गुण पाए गए है, इनमें से 1005 में कीटनाशी, 384 में भोजनरोधी, 297 में प्रतिकर्षक, 31 में कीट वृद्धि निरोधी एवं 27 में कीट आकर्षण गुण पाए गए हैं। देश में लगभग 8 करोड़ नीम के पेड़ हैं जिनसे 0.7 करोड़ टन नीम के फलों का उत्पादन हो सकता है। आज 71 व्यावसायिक नीम आधारित कीट रसायन घोल फसलों पर इस्तेमाल करने के लिए उपलब्ध हैं। इनको समेकित प्रबंधन कार्यक्रम में प्रयोग करके वातावरण पर विषैले कीटनाशियों के प्रभाव को कम किया जा सकता है। आमतौर पर यह देखा गया है कि व्यावसायिक नीम आधारित कीट रसायनों के उपयोग की मात्रा लगभग 500 मि.

लिटर प्रति हेक्टैयर से 5 लीटर प्रति हैक्टेयर तक है। इसमें सुधार लाने की आवश्यकता है। बाजार में उपलब्ध नीम आधारित कीट रसायनों की गुणवत्ता पर नियंत्रण रखना आवश्यक है। वानस्पतिक कीटनाशियों का प्रयोग हानिकारक कीटों तथा व्याधियों की रोकथाम के साथ–साथ मृदा की उर्वरता को बढ़ाने में भी सहायक है।

जैविक नियंत्रण

प्राकृतिक पारिस्थितिक तंत्र में पीडकनाशी पर नियंत्रण उनके प्राकृतिक शत्रुओं के द्वारा स्वतः ही बना रहता है, लेकिन विकृत पारिस्थितिक तंत्र में पीडकजीवों की संख्या बढ़ जाने पर अधिक संख्या में परजीवी एवं परभक्षी कीड़ों का इस्तेमाल करना पड़ता है। जैविक नियंत्रण कार्यक्रम में इन प्राकृतिक शत्रुओं के संरक्षण ओर उनके संवदर्धन को पहली प्राथमिकता दी जानी चाहिए। समेकित प्रंबधन कार्यक्रमों में परजीवी पर परभक्षी कीटों के उपयोग को बढ़ावा देने के लिए ट्राइकोग्रामा, क्राइसोपरला, लेडीबर्ड भृंग आदि कीटों का प्रयोगशालाओं में कृत्रिम आहार पर उत्पादन कर व उनकी संख्या बढ़ाकर उन्हें प्रयोग में लाया जा रहा है। इससे कीटनाशी दवाओं के छिड़काव में कटौती करके, फसल पर आने वाली लागत में कमी होती है तथा प्राकृतिक संतुलन की रक्षा होती है। हमें परजीवी एवं परभक्षी कीटों की ऐसी जातियाँ विकसित करनी चाहिए जो विपरीत परिस्थितियों में भी ज्यादा कारगर सिद्ध हों। इन परजीवी कीटों में रासायनिक कीटनाशी दवाओं के प्रति प्रतिरोधी क्षमता को विकसित करना भी आवश्यक है।

सूक्ष्मजीवों का प्रयोग कर हानिकारक कीटों, विभिन्न रोगों व खरपतवारों को नियंत्रित करने की विधि जैविक नियंत्रण कहलाती है। इस विधि में प्रयोग आने वाले सूक्ष्म–जीव 'जैव नियंत्रणं कारक' कहलाते हैं

हानिकारक कीटों या रोगों के नियंत्रण के लिए उपयोग में लाए जाने वाले सूक्ष्म–जीवों को क्रमशः जैव कीटनाशी या जैव रोगनाशी कहते हैं। जैव कीटनाशी जीवाणु, विषाणु, फफूँद, प्रोटोजोआ आदि हो सकते हैं। इनके प्रयोग से कीटों में इनके प्रति प्रतिरोधी क्षमता विकसित होने की संभावना भी नहीं रहती है। इनको कीटनाशी रसायनों के साथ प्रयोग करने पर काफी प्रभावी पाया गया है। ये कीटों की वृद्धि एवं विकास को प्रभावित कर उनको निष्क्रिय कर मार देते है। जैव कीटनाशी का मुख्य जीवाणु बैसिलस थ्यूरिजेन्सिस है। इस समय भारतवर्ष में बी.टी. पर आधारित जैव कीटनाशी का विपणन किया जा रहा है। जैव कीटनाशियों का वर्णन इस प्रकार है–

(i) बी.टी. जीवाणु– आजकल पीडककीट के नियंत्रण हेतु बैसिलस थ्यूरिन्जियेन्सिस नामक जीवाणु का प्रयोग बहुतायत से किया जा रहा है। निजी कंपनियाँ भी इस कीटनाशी के उत्पादन में सहयोग कर रही हैं। यह जीवाणु डेल्टा एन्डोटॉक्सिन नामक विषैला द्रव्य कीटों के पेट के अंदर छोड़ता है। फलस्वरूप कीट रोगग्रस्त होकर मर जाता है। रोगग्रस्त सूड़ियां सुस्त हो जाती हैं, मुहँ से द्रव्य निकालती हैं, बाद में मर जाती हैं। ऐसी रोगग्रस्त सूंड़ियों का चूर्ण बनाया जाता है जिनका जीवन 6–12 माह का होता है। भारतीय बाजारों में बायोलेप, हाल्ट एवं डेलफिन जैसे नामों से बी.टी. कीटनाशी लोकप्रिय है बी.टी. जीवाणु अल्ट्रा वॉयलेट प्रकाश में प्रभावित होता है। अतः दोपहर बाद ही इस जीवाणु का कीट नियंत्रण में प्रयोग किया जाना लाभप्रद है। इस जीवाणु से गण डिप्टेरा की सूड़िया ही अधिक प्रभावित होती हैं, बी. टी. जीवाणु का एक ग्राम का एक लिटर पानी में घोल बनाकर

छिड़काव किया जाता है। खेत में इसका प्रयोग एक समान होना चाहिए। ऐसे क्षेत्र में जहाँ रेशम कीट पाले जा रहे हों, बी.टी. जीवाणु का प्रयोग नहीं करना चाहिए, अन्यथा रेशम कीट की सूड़ियाँ मर सकती हैं।

(ii) ट्राइकोकार्ड– यह ट्राइकोग्रामा फेसिएटम जाति की छोटी ततैया जो अंड परजीवी है, पर आधारित है। ये लेपिडोप्टेरा वर्ग के लगभग 200 प्रकार के हानिकारक कीटों के अंडों को खाकर जीवित रहती है। मादा ट्राइकोग्रामा अपने अंडे हानि पहुँचाने वाले कीटों के अंडों के बीच देती है। ट्राइकोग्रामा का जीवन–चक्र हानिकारक कीटों के अंडों के बीच चलता है। ट्राइकोकार्ड की पूर्ति पोस्टकार्ड के रूप में होती है, इसमें एक कार्ड पर लगभग 20,000 अंडे होते हैं। खेतों में जैसे हानिकारक कीट दिखाई दें, इन कार्ड के छोटे–छोटे टुकड़े काटकर खेत में अलग–अलग स्थान पर पत्तियों के जोड़ पर धागे से बाँध देना चाहिए। ट्राइकोकार्ड को प्रयोग करने से पहले फ्रिज में या बर्फ के डिब्बे में रखें। इसका प्रयोग शाम के समय करना चाहिए। इसका प्रयोग शाम के समय करना चाहिए। प्रयोग के पहले या बाद में रसायन का छिड़काव नहीं करना चाहिए। इसका प्रयोग सभी फलों, सब्जियों, गन्ना, कपास, सूर्यमुखी व दलहनी फसलों में प्रभावशाली है। बड़ी फसलों में 7 कार्ड/ हेक्टेयर व छोटी फसलों में 5 कार्ड/हेक्टेयर का प्रयोग 10–15 दिन के अंतराल पर 3–4 बार लाभदायक होता है।

(iii) क्राइसोपर्ला– क्राइसोपर्ला हरे रंग के कीट हैं। इन कीटों के लार्वा सफेद मक्खी, माहू, जैसिड, व रसाद (थ्रिप्स) आदि के अंडों और लार्वा को खाते हैं। इनका प्रयोग इन हानिकारक

कीटों से प्रभावित खेतों व फसलों हेतु लाभदायक हैं। क्राइसोपर्ला के अंडों को कोरसियरा के अंडों के साथ लकड़ी के बक्से में बुरादे के साथ रख दिया जाता है। इनके लार्वा कोरसियरा के अंडों को खाकर वयस्क बनते हैं। इनका प्रयोग 50,000–1,00,000 लार्वा या 500–1000 वयस्क प्रति हेक्टेयर एक हफ्ते में दो बार करना चाहिए।

(iv) लेडीबर्ड बीटल– यह काले रंग का आस्ट्रेलियन बीटल है। इनका प्रयोग अंगूर, शरीफा, गन्ना की फसल में मिलीबग क्रिप्टोलीमस और स्केल कीट हेतु लाभदायक पाया गया है। इसे लगभग 600 वयस्क प्रति एकड़ की दर से फसलों में छोड़ना चाहिए। इसके शिशु व प्रौढ़ दोनों ही कीटों को खाते हैं।

(v) ब्यूवेरिया बैसियाना– यह फफूँदी से बना जैव उत्पाद है। यह विभिन्न प्रकार के फुदके, फली छेदक, दीमक, बाल वाले केटरपिलर, आदि को नियंत्रित करता है। यह फलों, फूलों, सब्जियों के लिए लाभदायक है। इसकी 1 कि.ग्रा. मात्रा को 30–40 किग्रा. सड़ी हुई गोबर की खाद के साथ मिलाकर लगभग 7–15 दिनों तक नम करके रखने के बाद अंतिम जुताई से पहले 1 हेक्टेयर खेत में फैलाते है या इसके 1किग्रा. पाउडर को 300–400 लिटर पानी में घोलकर प्रति हेक्टेयर छिड़काव 12–15 दिन के अंतर पर शाम के समय करना चाहिए। इसके प्रयोग से कीटों के अंडे, लार्वा प्यूपे व वयस्क सभी अवस्थाएं पंगु व निष्क्रिय होकर मर जाती हैं।

(vi) न्यूक्लियर पॉलिहेड्रोसिस वायरस (एन.पी.वी.)– एनपीवी विषाणु केवल इंगित कीट को रोगग्रस्त कर नियंत्रित करते हैं। कीटों की सूँड़ी जैसे ही विषाणु से संक्रमित फल, फूल, पत्ती या फल खाती है, ये विषाणु सूँडी के आहारनाल की

कोशिकाओं से होती हुई न्यूक्लियस में पहुँचकर अधिक मात्रा में वृद्धि कर जाती हैं फलस्वरूप संक्रमित सूँडी पौधे के ऊपरी भाग पर चढ़कर लटक जाती है। सूँडी का शरीर गलने लगता है, सूँडी सुस्त हो जाती है, काली पड़ जाती है। पूरी तरह से संक्रमित सूँड़ी का शरीर फट जाता है एवं सफेद रंग का विषाणु मिश्रित तरल पदार्थ बाहर आने लगता है एवं सूड़ी मर जाती है। विषाणु की संख्या सूक्ष्मदर्शी के देखकर इनकी सांद्रता का पता करते हैं। हमारे देश में संवर्धित एवं विकसित एन.पी.वी. को चना, अरहर, टमाटर, सूरजमुखी, कपास मूँगफली इत्यादि फसलों में प्रयोग किया जा रहा है।

(vii) परजीवी ब्रेकान– इस परजीवी के शिशु की तरह–तरह के बेधक कीटों की सूंड़ी पर आश्रित होकर उन्हें खा जाते हैं। कपास, सब्जियों, नारियल जैसी फसलों में प्रति एकड़ 500–1000 वयस्क डालने से ये लाभ मिलता है।

(viii) पार्थीनियम बीटल– पार्थीनियम खरपतवार को नष्ट करने हेतु 'जाइग्रोगामा' नामक कीट का प्रयोग किया जा रहा है। यह कीट इस खरपतवार को खाकर समाप्त कर देता है। पार्थीनियम (गाजर घास) फसलों में उगने के साथ ही कुछ मनुष्यों और पालतू पशुओं में खुजली तथा अन्य बीमारियाँ फैलाते हैं।

इसके अतिरिक्त नींबू के स्केल कीट का वैलेडिया भृंग द्वारा, नारियल के कीट का ब्रेकान द्वारा चना फली बेधक का कैमपौलेटिस क्लोरीडी द्वारा नियंत्रण किया जा रहा है।

(ix) ट्राइकोडर्मा– यह एक मित्र कवक है, जो प्राकृतिक रूप से मिट्टी में पाया जाता है। इसकी अनेक जातियाँ हैं जिसमें से 'ट्राइकोडर्मा विरिडी' जाति का प्रमुख रूप से प्रभावी कवकनाशी

के रूप में उत्पादकों द्वारा बाजार मे विपणन की जा रही है। ट्राइकोडर्मा अनेक प्रकार से कार्य करता है। यह रोगकारक कवक के तंतुओं को लपेटकर उनसे भोजन प्राप्त करता है और अंत में शत्रु कवक को नष्ट कर देता है। यह एक आवरण बनाकर रोगजनित शत्रु कवक से पौधों की रक्षा करता है। इसका विकास शीघ्र होने के कारण अपने कवक तंतुओं और पौधों की जड़ों के आस–पास फैला देता है जिससे शत्रु कवक पौधे के पास नहीं आ पाते हैं और रोग उत्पन्न नहीं कर पाते हैं। ट्राइकोडर्मा जैव रोगनाशक, जैव कीटनाशी व जैव उर्वरक है। ट्राइकोडर्मा फसलों में जड़ तथा तना गलन/सड़न, उकठा (फफूँदी जनक रोग) और सूत्रकृमि व्याधि को नियंत्रित करने हेतु प्रयोग किया जाता है। इसका प्रयोग दलहनों, धान, गेहूँ, गन्ना, कपास सब्जियों, फलों फलवृक्षों पर करना लाभप्रद है। ट्राइकोडर्मा का प्रयोग कंद, कार्प, राइजोम, नर्सरी पौधों का उपचार 5 ग्राम ट्राइकोडर्मा को एक लिटर पानी में घोल में डुबोकर करें एवं इसके बाद बुआई या रोपाई करें। बीजशोधन के लिए 4 ग्राम ट्राइकोडर्मा एक किलो बीज में मिलाकर उपचारित कर बोए। इसके द्वारा बीजों का उपचार छायादार स्थान में करें। मृदा शोधन के लिए एक किलो ट्राइकोडर्मा को 25 किग्रा. गोबर की खाद में मिलाकर तथा हल्का पानी मिलाकर, छाया में रखें इसके बाद बुआई के पहले प्रयोग करें। यह मात्रा एक एकड़ के लिए पर्याप्त है। ट्राइकोडर्मा के प्रयोग के पहले या बाद में किसी रासायनिक फफूँदीनाशक व अन्य रसायनों का प्रयोग न करें। पादप सूत्रकृमि के नियंत्रण के लिए ट्राइकोडर्मा के साथ नीम की खली का प्रयोग लाभप्रद होता है। इसके अलावा ट्राइकोडर्मा हारजीएनम और ग्लियोक्लेडियम वायरेन्स से काली मिर्च में लगने वाले 'फाइटोफ्थोरा कैपसिसी' का

संक्रमण रोका जा सकता है। यह बाजार में सभी जगह तरल पदार्थ एवं चूर्ण के रूप में उपलब्ध हैं। इसके एक ग्राम में एक करोड़ निवह बनाने वाली इकाइयाँ होती है। इसका अन्य बहुत से वाहको के साथ भी प्रयोग किया जाता है। इसका अच्छा परिणाम पाने के लिए खेत में गोबर की खाद, हरी खाद व उपर्युक्त नमी भी आवश्यक है। इसका प्रयोग करते समय हाथों को आँख व मुँह में न लगाएं। उपचार करने के बाद हाथों को साबुन लगाकर अच्छे से धो लें। ट्राइकोडर्मा संजीवनी, बायोडर्मा, इकोडर्मा आदि नामों से बाजार में बिक रहा है।

पराजीनी पौधे

आजकल विभिन्न फसलों में बेसिलस थ्यूरिजिएन्सिस नामक जीवाणु के जीन को प्रविष्ट कराकर ऐसे पौधे तैयार किये जा रहे हैं जिससे जीवाणु की उपस्थिति के कारण कीटनाशक गुण आ जाते हैं। इस प्रकार के पौधों का विकास हीलियोथिस कीट पर नियंत्रण हेतु किया जा रहा है।

भारत सरकार ने जैव उर्वरकों को प्रोत्साहित करने के लिए देश के सात राज्यों में राष्ट्रीय परियोजनाएं शुरू की हैं। देश की शीर्ष संस्था के रूप में राष्ट्रीय जैव उर्वरक केंद्र की स्थापना गाजियाबाद में की गई है। इसके अलावा देश में 6 क्षेत्रीय जैव उर्वरक विकास केंद्र क्रमशः जबलपुर, नागपुर, हिसार, बेंगलुरू, इंफाल व भुवनेश्वर में स्थापित किए गए है। ट्राइकोडर्मा, ट्राइकोग्रामा तथा एन.पी.वी. का उत्पादन उत्तर प्रदेश में 6 आई.पी.एम. प्रयोगशालाओं (हरदोई, आजमगढ़, वाराणसी, जालौन, बरेली तथा मथुरा) के साथ कानपुर, फैजाबाद व मोदीपुरम (मेरठ) कृषि विश्वविद्यालयों तथा भारत सरकार की दो प्रयोगशालाओं, गोरखपुर व लखनऊ में एवं क्राइसोपर्ला का उत्पादन, मेरठ विश्वविद्यालय

में तथा सभी जैव कारकों व जैव कीटनाशियों का उत्पादन के लिए प्रौद्योगिकी को उद्योगों को स्थानांतरित किया गया है।

कृषिगत अथवा पारिस्थितिकीय नियंत्रण

हमारी प्राचीन कृषि पद्धति बहुत ही उपयुक्त एवं पर्यावरण के अनुकूल थी। मौसम में परिवर्तन भी कम देखे जाते थे। लेकिन आज की वैज्ञानिक कृषि प्रणाली कीटों के संवर्धन में अत्यधिक सहायक सिद्ध हुई है, अतः सभी कृषिगत क्रियाएं उपयुक्त पारिस्थितिकी नियंत्रण कहलाती हैं, जबकि कृषिगत प्रबंधन में वातावरण में सोद्देश्य हेरफेर करते हैं जिससे कीटों की संख्या में कमी आती है। कृषिगत उपायों के अंतर्गत निम्नलिखित बातों का ध्यान रखा जाता है–

1. जुताई, गुड़ाई, बुआई, निराई, सिंचाई समय से करना चाहिए अंतर्गत साथ ही रासायनिक उर्वरकों का संतुलित उपयोग करना चाहिए।

2. फसलों में पौध से पौध एवं पंक्ति से पंक्ति की दूरी, फसल के अंदर एवं पड़ोस में उगाई गई फसलें, फसल चक्र, एवं फसल के बाद दूसरी फसल का अंतराल, बुवाई अथवा रोपाई के समय को ध्यान में रखकर कीटों की गतिविधियों में कमी की जा सकती है।

3. मिश्रित खेती, पट्टीदार खेती तथा प्रपंच फसलें उगाकर कीटों के प्रकोप में कमी लाई जा सकती है।

4. पोटैशियम उर्वरकों के संतुलित उपयोग से कीटों की संख्या में कमी आती है।

इस प्रकार किसानों द्वारा किये जाने वाले कृषि कार्यों जैसे भूमि की जुताई, स्वच्छ बीज का प्रयोग सिंचाई का नियमन, बुआई व कटाई के समय का सुनियोजन, ट्रेप फसलों का प्रयोग,

सुनियोजित फसल–चक्र व फसल अवशेषों के विघटन इत्यादि द्वारा नाशीजीवों का नियंत्रण किया जाता है। इन्हें ठीक तरीके से अपनाने में काई अतिरिक्त लागत भी नहीं आती है। जिस कीट विशेष को नष्ट किया जाना है, अगर उसके जीवन वृत्तांत, व्यवहार, आवास व पारिस्थितिकी को पूरी तरह समझ लिया जाए तो खेती विषयक पद्धतियों को परिष्कृत किया जा सकता है। इन तरीकों को अपनाने में अतिरिक्त लागत नहीं आती लेकिन किसानों को पीडकजीवों के प्रबंधन में इनसे होने वाले लाभों के बारे में पर्याप्त जानकारी देना आवश्यक है।

सही समय पर विभिन्न शस्य क्रियाएं अपनाने से पीडकजीवों एवं व्याधियों की समस्याओं को काफी हद तक रोका जा सकता है।

प्रतिरोधी पोषक पौधों को उगाना

प्रायः किसी फसल का जहाँ एक पौधा कीटों के प्रति अति संवेदनशील होता है तो वहीं पड़ोसी पौधा कीट प्रतिरोधी हो सकता है। प्रतिरोधी पौधे या तो कीटों द्वारा पंसद नहीं किये जाते हैं या सहिष्णु होते हैं अथवा कीटों को पोषक आहार नहीं प्राप्त होता हैं। फलस्वरूप उनका आकार एवं विकास प्रभावित होता है। वे सभी पौधे जिनमें कीटों के प्रति कोई भी प्रतिरोधी लक्षण पाया जाए, प्रतिरोधी पोषक पौधा या जाति कहलाते हैं। प्रत्येक क्षेत्र में प्रतिरोधी जातियों को खेती में उपयुक्त स्थान मिलना चाहिए अन्यथा प्रतिरोधी जातियाँ टूट जाती हैं। ऐसा कीटों के बायोटाइप विकसित होने से होता है। भारतवर्ष में भी पीडककीट प्रतिरोधी प्रजातियां विकसित की गई हैं। धान की प्रतिरोधी जातियां अधिकतर प्रदेशों में विकसित की गई है।

यांत्रिक एवं भौतिक नियंत्रण

जब कीटों को किसी यंत्र की सहायता या किसी भौतिक विधि से मारा जाता है तो वह यांत्रिक या भौतिक नियंत्रण कहलाता है। इसके द्वारा परिणाम तुरंत प्राप्त होते हैं, इसीलिए किसानों में यह विधि काफी लोकप्रिय है। यांत्रिक उपायों में प्रकाश विपाश तकनीक अधिक प्रयोग में लाई जाती है। प्रकाश प्रपंच में पेट्रोमेक्स/लालटेन को एक चिपचिपे मोबिल ऑयल से भरे टब में रखकर खेत में रख देते हैं। रात में निकालने वाले नर व मादा कीट प्रकाश की ओर आकर्षित होते हैं और टब में गिरकर मर जाते हैं।

कीट नियंत्रण के भौतिक उपायों में भौतिक साधनों जैसे ताप, प्रकाश, ध्वनि, बिजली आदि का प्रयोग करके कीटों की संख्या में कमी लाई जाती है।

फेरोमोन का प्रयोग

प्रत्येक कीट जाति का अपना अलग फेरोमोन रसायन होता है। प्रायः मादा कीट एक प्रकार का हॉर्मोन निकालकर नरकीट को मैथुन हेतु आकर्षित करती है। वैज्ञानिकों ने अनेक कीटों के केवल इस व्यवहार को ही नहीं पहचाना, बल्कि हार्मोन के रसायन को भी पहचाना है। उन्हीं रसायनों को कृत्रिम रूप से संश्लेषित कर इनके प्रयोग हेतु कई प्रकार के पट एवं विपाशा को भी विकसित किया है। इनका प्रयोग अब नर कीटों को एकत्रित कर क्षेत्र में उनकी उपस्थिति एवं घनत्व को जानने के लिए कर रहे हैं। फैरोमोन रसायन प्रकृति के अनुरूप होते हैं। कीट नियंत्रण की अन्य विधियों के प्रति सहिष्णु भी होते हैं। कपास की गुलाबी सूंडी, गन्ने का बेधक कीट, चने की फली का बेधक कीट, तंबाकू की

सूंडी एवं भिंडी की चितकबरा सूंडी के फेरोमोन का प्रयोग इनकी संख्या आकलन एवं मैथुन में अवरोध हेतु किया जा रहा है।

कीटनाशी रसायनों का प्रयोग

समेकित प्रबंधन कार्यक्रम में चुने हुए कीटनाशियों का ही प्रयोग किया जाना चाहिए। कीटनाशियों का चयन व्यवस्थित रूप में किया जाना चाहिए। ऐसे कीटनाशक जिनसे हानिकारक कीटों को ही क्षति पहुंचे तथा प्राकृतिक शत्रुओं में कोई नुकसान न हो अथवा कम से कम नुकसान हो, के प्रयोग पर अधिक ध्यान देना चाहिए। कीटनाशियों का आवश्यकता आधारित उपयोग किया जाए। आर्थिक मानदंडों के अनुरूप तथा आवश्यकता आधारित कीटनाशियों का इस्तेमाल समेकित पीडकजीव प्रबंधन का महत्वपूर्ण अंग है। अगर उत्पाद मूल्य बढ़ता है तो कीटनाशियों के इस्तेमाल की आर्थिक सीमा कम हो जाती है, जबकि यह सीमा अगर बढ़ती है तो कीटनाशियों की लागत में वृद्धि होती है। अतः आर्थिक मानदंड के अनुसार कीटनाशियों का प्रयोग करें।

कीटनाशियों के छिड़काव उपकरणों की भी कीटनाशी के उपयोग में कमी करने तथा फसलों पर पूर्ण रूप में छिड़काव करने में महत्वपूर्ण भूमिका है। आज कई तरह के नोजल व छिड़काव उपकरण उपलब्ध हैं जो कि अच्छी तरह से पर्णीय छिड़काव करने में सक्षम हैं। ये छिड़काव क्षमता को बढ़ाते हैं तथा छिड़काव करने वाले व्यक्ति के लिए भी अधिक सुरक्षित हैं।

पादप संगरोध

नये क्षेत्रों में पादप नाशी जीवों एवं रोगों के बहिष्करण, निरोध या स्थापित होने में विलंब के उद्देश्य से कृषि पदार्थों के लाने एवं ले जाने पर कानूनी प्रतिबंध लगाने को पादप संगरोध कहते हैं, जो विभिन्न वैधानिक उपायों द्वारा कार्य करते हैं।

समेकित कीट प्रबंधन हेतु आवश्यक तथ्य

समेकित कीट प्रबंधन के लिए निम्नलिखित बातों का ध्यान रखना आवश्यक है–

1. सबसे पहले फसल को क्षति पहुंचाने वाले मुख्य कीटों की पहचान होनी चाहिए।

2. हानिकारक कीटों के परजीवी, पराक्रमी या रोगाणु जीवों तथा इनकी संख्या को प्रभावित करने वाले भोजन एवं जलवायु संबंधी कारकों का ज्ञान आवश्यक है।

3. कीटों की संख्या को प्रभावित करने वाले पर्यावरण के कारकों सर्दी, गर्मी, वर्षा, नमी, धूप आदि तथा फसल की कटाई–बुवाई आदि के समय पर्यावरणीय परिवर्तनों पर विशेष ध्यान रखा जाए कि वह किस कारक से सबसे अधिक प्रभावित होते हैं।

4. हानिकारक कीट के जीवनवृत्त में दुर्बल अवस्था का ज्ञान आवश्यक है। उसी समय कीट नियंत्रण संबंधी उपाय प्रयोग में लाए जाएं।

5. पारिस्थितिक तंत्र में उपस्थित जैविक तथा भौतिक कारकों के बीच सामंजस्य बनाए रखना चाहिए।

पर्यावरण में इसके भौतिक और जैविक घटकों के बीच एक निश्चित संतुलन आवश्यक है। इनमें से किसी की भी कमी के कारण यदि यह संतुलन बिगड़ता है तो इसका प्रभाव जीव जगत के साथ सीधे मनुष्य पर भी पड़ता है। इसलिए पारिस्थितिक संतुलन बनाए रखना आवश्यक है।

इस प्रकार स्पष्ट है कि प्रचलित कीटनाशी नियंत्रण युक्ति की तुलना में समेंकित पीडकजीव प्रबंधन तकनीक अधिक प्रभावी, अधिक लाभकारी, कम खर्चीली एवं प्रयोगकर्ता तथा वातावरण के

लिए कम हानिकारक है। अतः पर्यावरण संरक्षण एवं सतत विकास की अवधारणा को सफल बनाने की दिशा में समेकित पीडकजीव प्रबंधन तकनीक को अपनाना अत्यंत आवश्यक है।

पादपोपचार (फाइटोरेमिडियेशन) धातु निस्तारण की एक बेहतर तकनीक

आजकल अनेक भारी धातुएं प्रदूषण के संदर्भ में बहुचर्चित हैं। इनमें से कुछ तो अत्यंत घातक हैं। यहाँ तक कि यदि दस लाख भाग में इसका एक भाग भी विद्यमान रहे तो ये जानलेवा बन जाती हैं। इन धातुओं में से कुछ धातुएं उद्योग के काम आती हैं, अतः इन धातुओं का प्रचुर अंश विषरूप में पर्यावरण में मिलता रहता है। उद्योगों में काम करने वाले व्यक्ति धातुओं के धुंए, उनके आँक्साइड तथा उनके वाष्पशील यौगिकों के संपर्क में आते हैं। इन धातुओं का मृदा, जल, पौधों, जीव–जंतुओं यहाँ तक कि मनुष्यों में अनावश्यक रूप से संचय होता रहता है। निरंतर संपर्क में आते रहने से मनुष्यों के स्वास्थ्य पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है।

पौधों में धातु संचय करने तथा प्रतिरोध करने की क्षमता होती है। पौधों द्वारा प्रदूषकों का अवशोषण या निस्तारण पादप उपचार (फाइटोरेमिडियेशन) कहलाता है। विभिन्न भारी धातुओं के उपचार के लिए यह एक विश्वसनीय तकनीक है । कुछ पौधे विभिन्न प्रदूषकों तथा धातुओं को अवशोषित करने की क्षमता रखते हैं। अधिक मात्रा में प्रदूषकों को अवशोषित करने वाले पौधों को धतु पादप (मेटेलोफाइट) या (हाइपर परासंचयक एकुमुलेटर) कहते हैं। ये पौधे भारी धातुओं को जड़ों द्वारा अवशोषित करके अपने अनुपयोगी ऊतकों में संचयित करते हैं। कुछ अध्ययनों से पता चजा है कि पौधों की जड़ें मिट्टी में कार्बनिक प्रदूषकों की जैविक अपघटन प्रक्रिया को तेज कर देती है। मिट्टी तथा पानी में भारी

धातुओं की मात्रा के मॉनीटरन और प्रदूषण निवारण के लिए ऐसे अनेक प्रकार के पौधों का बड़े पैमाने पर उपयोग किया जा रहा है।

पौधे विभिन्न धातुओं को घुलनशील आँक्सीकरण (soluble oxidation) अवस्था से अघुलनशील आँक्सीकरण अवस्था में (insoluble oxidation state) में परिवर्तित करके धातु निष्क्रियण को रोकते हैं। साथ ही उन्हें उद्ग्रहण, अवक्षेपण और अपचयन के माध्यम से निष्क्रिय किया जा सकता है। पौधे अपनी जड़ों की सतह में उपस्थित सूक्ष्मजीवों की विघटनकारी प्रक्रिया के द्वारा कार्बनिक यौगिकों को तोड़कर सरलीकृत कर देते हैं और इसे आसानी से ग्रहण कर लेते हैं। इन उपचारित पौधों को प्रदूषित स्थल से दूर ले जाकर, विभिन्न विधियों द्वारा इनमें संचयित तत्वों को इनसे अलग कर लिया जाता है। जैव प्रौद्योगिकी की सहायता से इस समय ऐसी विधियां विकसित कर ली गई हैं जिनके द्वारा चुने हुए तथा विशेष रूप से निर्मित सूक्ष्मजीवों के प्रयोग से पौधों द्वारा धातुओं का अवशोषण बढ़ाकर मृदा पुनः कृषि योग्य बनाई जा सकती है। दूसरी ओर पारंपरिक विधियों की अपेक्षा कम लागत से अधिक धातु प्राप्त करने के प्रयास जारी हैं। सर्वप्रथम अमेरिका के सूक्ष्मजीवी वैज्ञानिकों ने सन् 1947 में थामोबैसिलस फैरोऑक्सीडेस नामक जीवाणु की सहायता से तांबे को कच्ची धातु से प्राप्त किया था। ये जीवाणु पूरी तरह से सल्फाइड पर जीवन यापन करते हैं और अम्लीय वातावरण में तेजी से बढ़ते हैं।

सूक्ष्म जीव जैवउत्प्रेरक (biocatalyst) की तरह कार्य करते हैं तथा प्रदूषकों के सहारे बढ़ते हैं इसलिए जैव–उपचार की गति

स्वाभाविक रूप से तेज होती है। सूक्ष्म जीवों में जैविक यौगिकों के अपघटन की स्वाभाविक क्षमता अधिक होती है। आनुवंशिक अभियांत्रिकी द्वारा सूक्ष्मजीवों की इस क्षमता में और भी वृद्धि की जा सकती है।

पौधे प्रदूषित पदार्थों के लिए जैविक चालनी का कार्य करते हैं। पौधे प्रदूषणकारी पदार्थों की सांद्रता को अपनी बाहरी या भीतरी सतह पर सोखकर इनको कम विषैले पदार्थों में परिवर्तित कर, स्वयं में एकत्रित कर तथा चयापचय द्वारा उनकी मात्रा को कम कर देते हैं।

धात्विक प्रदूषण को कम करने हेतु यद्यपि कई तकनीकें विकसित की जा चुकी हैं, तथापि अत्यधिक महँगी तथा कभी–कभी प्रायोगिक रूप से उपयोगी न होने के कारण इनको प्रत्येक स्थान पर प्रयोग में नहीं लाया जा सकता है। ऐसी परिस्थिति में पौधों के प्रयोग द्वारा इन धातुओं का निस्तारण एक सरल, सस्ती और आसान प्रक्रिया सिद्ध हो सकती है। विशेषकर पर्यावरणीय दृष्टिकोण से यह एक अनुकूल विधि है। इसमें अतिरिक्त हानिकारक उत्पादों की संभावना काफी कम होती है।

पादपोचार–आधारित निस्तारण के लिए सबसे पहली आवश्यकता प्रदूषणकारी भारी *फेस्चुका रूब्रा* तथा *लिगुस्टम वुलगेरी* की पत्तियाँ कैडमियम, जिंक, लैड और निकैल के लिए, *डाइक्रेनम पॉलीसेटम* तथा *स्फैगनम* जातियाँ कैडमियम, कॉपर, ऑयरन, मरकरी, निकेल, लेड तथा जिंक के लिए प्रयुक्त होती है। सूचक पौधे भारी धातुओं की अधिक मात्रा अवशोषित करते हैं लेकिन इनकी प्रतिरोधक क्षमता कम होती हैं जिसके कारण रंध्र, क्यूटिकल, ट्राइकोम आदि में परिलक्षित होने वाले परिवर्तन बाहर से स्पष्ट रूप से दिखाई देने लगते हैं। कुछ शैवाल जैसे क्लेडोफोरा और

स्टीमिआलोनियम का प्रयोग जल में भारी धातु प्रदूषण के सूचक के रूप में होता है। भारी धातु प्रदूषण की उपस्थिति में क्लेडोफोरा पूर्णतया उस स्थान से समाप्त होने लगता है।

प्रदूषण की पहचान हो जाने के पश्चात ऐसे पौधों का चुनाव किया जाता है जो इनके निस्तारण की क्षमता रखते हैं। निस्तारण की यह सफलता पौधों की जाति तथा मृदा सुधार की विधि पर काफी सीमा तक निर्भर करती है। कुछ पौधों के ऊतकों में काफी अधिक मात्रा में भारी धातुओं को संचित करने की शक्ति होती है और इन्हीं पौधों का उपयोग मृदा धातुओं का अवशोषण करने में किया जाता है। यह निस्तारण कई अन्य कारकों पर भी निर्भर करता है जैसे– पौधों की अधिक से अधिक मात्रा में भारी धातुओं को एकत्रित करने की क्षमता, पर्याप्त मात्रा में जैव–भार का उत्पादन, रोपाई तथा कटाई की सरलता इत्यादि।

पादप उपचार के इतिहास पर दृष्टिपात करने पर पता चलता है कि सर्वप्रथम इटली के एक शोधंकर्ता ने 1948 में यह पाया कि **एलाइसम वेस्टोलिनी** नामक पौधा निकैल धातु की अधिक मात्रा संचित करने की क्षमता रखता है किंतु उनका यह शोध कार्य अधिक ख्याति प्राप्त नहीं कर सका। पुनः 1977 में मैसी विश्वविद्यालय, न्यूजीलैंड के शोधकर्ता रॉबर्ट कुक ने इसी तरह की खोज की जानकारी दी। इस बार उनकी रिपोर्ट को इंग्लैन्ड क वैज्ञानिकों ने गंभीरता से लिया। 1980 में अमेरिका के वैज्ञानिक चैनी ने धातुओं का उच्च संचयन करने वाले पौधों का उपयोग "टॉक्सिक–साइट–क्लीनर्स" के रूप में करने का सुझाव दिया।

तीव्र गति से बढ़ते हुए औद्योगिकीकरण के परिणामस्वरूप रसायन, चमड़ा, कपड़ा, औषधि, रंग आदि उद्योगों में धातुओं का बड़ी मात्रा में प्रयोग हो रहा है। इन उद्योगों से निकलने वाले

जलीय, वाष्पीय ठोस अपशिष्टों के साथ इन धातुओं की काफी मात्रा पर्यावरणीय प्रदूषण का कारण बन रही है। ये भारी धातुएं प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से खाद्य शृंखला के माध्यम से शरीर में पहुँचकर हानि पहुँचाती हैं। जड़ों द्वारा अवशोषित होकर ये धातुएं पौधों में उपस्थित आवश्यक रसायनों से संकुलित होकर उसके विभिन्न भागों में स्थिर हो जाते हैं तथा कुछ अंततः अवक्षेपित हो जाती हैं। कुछ अन्य मुख्य रूप से पत्तियों में जाकर एकत्रित हो जाती हैं।

एल्पाइन पेनीक्रेस (थ्लास्पी सेरूलेसेन्स) अन्य पौधों की अपेक्षा 10 से 100 गुना अधिक जिंक अवशोषित कर सकता है। वस्तुतः सूखे पौधे के प्रति किलोग्राम भार के अनुपात में यह 25 ग्राम जिंक का अवशोषण कर सकता है और इसीलिए इसकी सहायता से अमेरिका में पामरटन नामक स्थान में बंद हो गए जिंक स्मेल्टरों के आसपास की भूमि को उर्वरा बनाने में आशातीत सफलता मिली है। इतना ही नहीं, यह पौधा इसी अनुपात में लगभग 16 ग्राम निकैल तथा अच्छी मात्रा में कैडमियम का भी अवशोषण कर सकता है। ये दोनों ही प्रदूषक तत्व भी जिंक स्मेलटरों की ही देन हैं।

सेबोर्टिया अकुमिनाटा एवं *एलियम लेस्बिएकम* नामक पौधे भी निकैल की भारी मात्रा को अवशोषित करने में सक्षम हैं। *ब्रेसिका नेपस,* सेलीनियम के आधिक्य वाली मिट्टी को सामान्य बना सकता है यह कैडमियम और बोरोन को भी भारी मात्रा में अवशोषित करने की क्षमता रखता है।

लेड आधारित उद्योगों एवं मोटर वाहनों से लेड मृदा में इतनी अधिक मात्रा में संचित हो जाता है कि यह विषाक्त बन जाता है। शीलाधर मृदा विज्ञान संस्थान, इलाहाबाद विश्वविद्यालय

में किए गए शोध कार्य से पता चला है कि लेड प्रदूषित मृदा को कृषि योग्य बनाने में भारतीय पीली सरसों *ब्रेसिका जन्सिया* तथा कैडमियम प्रदूषित मृदा में सूरजमुखी (*हैलिएंथस एन्नस*) बहुत लाभकारी हैं।

धातुओं को जड़ से तने में लाने के लिए वाष्पोत्सर्जन की प्रक्रिया भी एक प्रमुख भूमिका निभाती है। लेड के लिए सबसे प्रमुख वानस्पतिक निस्तारक *थ्लास्पी रोटंडीफोलियम* है। इसके अतिरिक्त ब्रेसिका जंसिया भी इसका उत्कृष्ट उदाहरण है जिसमें लेड, कैडमियम को अवशोषित करने की आनुवंशिक शक्ति पाई जाती है। जई और जौ में भी कॉपर, कैडमियम और जिंक के निस्तारण की क्षमता पाई जाती है। इसके अतिरिक्त कार्न, राईघास, हालकस तथा डेस्चैम्पसिया आदि पौधों में भी भारी धातुओं के निस्तारण की प्रचुर क्षमता का पता चला है। इतना ही नहीं, पॉपलर (पॉपलर गतिज) के पौधों की जिंक, अवशोषण क्षमता के कारण पेट्रोलियम कुँओं से निकले लवणीय अपशिष्ट जल को शोधित करने का प्रयास किया जा रहा है। इन पौधों की जड़ों द्वारा अवशोषण को आंका जा चुका है। अब जड़ों को खोदकर निस्तारण करने की विधि का विकास किया जा रहा है ताकि एकत्रित जिंक को वहाँ से हटाया जा सके।

मृदा में सीसे की अवशोषण क्षमता को सरसों के पौधे में बढ़ाने के लिए 'कीलेट' यौगिकों का भी परीक्षण किया जा रहा है। इतना ही नहीं, इन 'कीलेट' यौगिकों के मृदा में प्रयोग से अन्य धातुएं जैसे कैडमियम, कॉपर, निकैल तथा जस्ता जैसी धातुओं की सरसों के तनों में एकत्रित करने की क्षमता को बढ़ते भी पाया गया है।

आजकल आनुवंशिक अभियांत्रिकी की सहायता से ऐसे ट्रांसजीनिक पौधों का निर्माण किया जा रहा है, जो विशिष्ट रूप से प्रदूषित मृदा का उपचार करने में सक्षम हों। परंपरागत फसलों में अत्यधिक संचय की प्रवृत्ति उत्पन्न करने के प्रयास किये जा रहे हैं। ये प्रयोग ब्रैसिका के पौधों पर किए जा रहे हैं जिनकी जड़ों में भारी धातुओं के संचयन की क्षमता पायी गई है। पाइसम सटाइवम (*Pisum sativum*) की एक उत्परिवर्तित जाति तैयार की गई है जो पाइसम की जंगली जाति की तुलना में 10–100 गुना अधिक आयरन का संचय करती है।

जैव प्रौद्योगिकी की सहायता से पौधों की ऐसी जातियाँ विकसित करने की आवश्यकता है जो अधिक से अधिक मात्रा में भारी धातुओं का संचय कर सके। इसके लिए मृदा रसायनज्ञ जैव प्रौद्योगिकीविद, पारिस्थितिकीविद्, पर्यावरणविद्, जल–अभियांत्रिकी विशेषज्ञ, कृषि वैज्ञानिकों सभी को एक साथ मिल बैठकर ऐसी कार्यनीतियाँ तैयार करने की आवश्यकता है जिससे इस तकनीक का सफल कार्यान्वयन हो सके और पर्यावरण के विभिन्न घटकों यथा–मृदा, जल तथा वायु से प्रदूषकों की मात्रा को कम किया जा सके। इस दिशा में धातु–उद्ग्रहण, संचयन, स्थानांतरण, कीलेटीकरण एवं जड़ अवक्षेपण पर शोधकार्य की आवश्यकता है। पर्यावरण अभियांत्रिकी, मृदा सूक्ष्म जीवविज्ञान, जैसे क्षेत्रों का एक संयुक्त अनुसंधान इस विधा को अधिक कारगर बनाने के लिए आवश्यक है।

अध्याय – 13

मृदा संरक्षण और उसके उपाय

आर्द्र प्रदेशों में मृदा का निक्षालन अधिक होता है और क्षारीय पदार्थ शीघ्रता से पृथक् हो जाते हैं। ऐसी मृदाओं में से कैल्सियम जैसे बुनियादी तत्व घुलकर पूर्णतः निकल जाते हैं। कैल्सियम के निक्षालन के साथ ही मृदा की सतह के निकट लोह एवं ऐलुमिनियम का संचय होने लगता है। इस परिस्थिति में बुनियादी तत्वों के अभाव एवं हाइड्रोजन आयन की प्रचुरता के कारण मृदा में अम्लीयता रहती है। इन मृदाओ में उर्वरता कम होती है और इनमें फॉस्फोरस एवं पोटैश की विशेष रूप में कमी बनी रहती है।

कम वर्षा वाले क्षेत्रों में इसके ठीक विपरीत कुछ बुनियादी यौगिक जैसे कैल्सियम, मैग्नीशियम और सोडियम के कार्बोनेट, सल्फेट, क्लोराइड एवं बाइकार्बोनेट मृदा में जमा हो जाते हैं।

मृदा किस प्रकार की होगी, यह बहुत कुछ इस बात पर निर्भर करता है कि वह किन घटकों से बनी है। ग्रेनाइट का अपक्षय बहुत धीमी गति से होता है और इससे बनी मृदा बहुत की कम उर्वरा शक्ति की होती है। चूना पत्थर (लाइमस्टोन) से विकसित होने वाली मृदा अपेक्षाकृत अधिक गहरे रंग की तथा अधिक उर्वर होती है। कम उर्वरा शक्ति वाली बलुई मृदा बालुकाश्म

(सैंडस्टोन) से बनी होती है सिल्टी दोमट मृदाएं शैल से विकसित हुई होती है।

जनक पदार्थ का गठन पैतृक पदार्थ में उपस्थित चट्टानों के टुकड़ों और खनिजों के प्रकार एवं पैतृक पदार्थ की प्राप्ति के स्रोत का बनने वाली मृदा पर अत्यधिक प्रभाव पड़ता है।

वैसे जनक पदार्थ एक निष्क्रिय कारक है और यह संभव है कि कई प्रकार के पैतृक पदार्थ एक प्रकार की ही मृदा बनाएं। यह भी संभव है कि एक प्रकार का ही पैतृक पदार्थ विभिन्न जलवायु प्रदेशों में विभिन्न प्रकार की मृदा बनायें।

लवण क्षार व अम्ल की समस्या– हमारे देश में लगभग 85 लाख हैक्टेयर भूमि लवण प्रभावित है, इन भूमियों की सतह पर सल्फेट व क्लोराइड आयन वाले लवण एकत्रित होकर सफेद परत के रूप में भी दृष्टिगत होते हैं। इनमें ली गई फसलों के बीजों का अंकुरण कम होता है और खड़ी फसलों के मध्य में विभिन्न आकार के गोल घेरे में कम बढ़वार वाले पौधे दिखते हैं। भूमि में लवणों का स्तर अधिक होने पर पत्तियों के अग्र सिरे झुलसने व फसल में पीलापन आने लगता है। क्षारीय मृदाओं में कार्बोनेट व बाइकार्बोनेट आयन की प्रमुखता रहती है। इन मृदाओं में सिंचाई देने या वर्षा के बाद उनके निचले भागों में जलभराव की स्थिति रहती है व पानी के सूखने पर 1 से 2 सेमी तक चौड़ी दरारें पड़ जाती हैं। क्षारीय मृदाओं के अधिक p.H. मान के कारण उनमें उपस्थित जैवतत्व मृदा जल में घुलकर कुछ काल बाद वाष्पन द्वारा भूमि की सतह पर जमा होने से भूमि की सतह चिकनी व काली होने लगती है। क्षारीय मृदाओं में फसलों की बढ़वार थम जाती है और अधिक मात्रा में क्षार जमा होने पर भूमि बंजर होने लगती है। फसलों पर सोडियम विनिमय की अधिकता से पौधों में कैल्सियम व मैग्नीशियम की कमी होने लगती है व जिंक की घुलनशीलता कम हो जाती है।

लवणीय मृदाएं

ये वे मृदाएं हैं जिनमें जिप्सम को छोड़कर अन्य विलेय उदासीन लवणों मुख्यतः सोडियम, कैल्सियम व मैग्नीशियम के क्लोराइड तथा सल्फेट की प्रचुरता होती है। इनका p.H. संतृप्तावस्था में 8.2 से कम, संतृप्त निष्कर्ष की विद्युत् चालकता $4dSm^{-1}$ या इससे अधिक तथा विनिमेय सोडियम 15 प्रतिशत से कम होता है।

क्षारीय मृदाओं का सुधार

इन मृदाओं में विनिमेय सोडियम और/या सोडियम बाईकार्बोनेट, सोडियम कार्बोनेट तथा सोडियम सल्फेट लवणों की प्रचुरता होती है। इनका p.H. संतृप्तावस्था में 8.2 या इससे अधिक संतृप्त निष्कर्ष की विद्युत चालकता सीमा रहित तथा विनिमेय सोडियम 15 प्रतिशत या इससे अधिक होता है। लवणीय एवं क्षारीय मृदाओं का सुधार आज एक बड़ी चुनौती बनी हुई है। राज्य सरकारों ने ऊसर सुधार के अनेक कार्यक्रम चलाए हुए हैं, लेकिन प्रतिवर्ष जितनी मृदा का सुधार होता है उतनी ही नई भूमि, जल व मृदा के कुप्रबंधन के कारण ऊसर हो जाती है।

ऊसर मृदाओं के सुधार के लिए सर्वप्रथम जल की व्यवस्था होनी आवश्यक है। ऊसर मृदा के सुधार के लिए ट्यूबवेल का पानी सर्वोत्तम माना जाता है। सिंचाई जल की जांच कराकर उसकी उपयुक्तता ज्ञात कर लेनी चाहिए। इसके पश्चात मृदा का परीक्षण कराकर मृदा की प्रकृति का पता लगा लेना चाहिए। यदि मृदा लवणीय है तो इस मृदाओं का सुधार निक्षालन द्वारा आसानी से किया जा सकता है। लेकिन क्षारीय मृदाओं में सोडियम की मात्रा अधिक होने से इन मृदाओं की संरचना खराब हो जाती है, जिससे मृदा में वायु एवं जल का संचार बाधित हो जाता है। यही कारण है कि इन मृदाओं में सिंचाई करने पर खेत

में काफी दिनों तक पानी भरा रहता है तथा सूखने पर ये बहुत कड़ी हो जाती हैं।

लवणीय मृदा की ऊपरी सतह पर सफेद परत के रूप में उपस्थित लवणों को खुरचकर हटाया जा सकता है। यह एक सरल उपाय है किंतु खर्चीला है। लगभग 15–30 सेमी. गहराई तक लवण खुरचते हैं और खुरची हुई मृदा को खेत से बाहर कर देते हैं। यह तरीका बहुत लाभप्रद नहीं है क्योंकि नीचे से लवण थोड़े समय बाद पुनः ऊपर आ जाते हैं।

निक्षालन (लीचिंग) द्वारा लवणों को जल में विलेय करके पादप जड़क्षेत्र से नीचे ले जाया जाता है ताकि पौधों पर लवणों का बुरा प्रभाव न हो सके। निक्षालन हेतु इतना जल देना चाहिए जो फसलों की जरूरत के साथ–साथ निक्षालन मांग को भी पूरा कर सके। निक्षालन मांग सिंचाई के जल का वह भाग है जो लवणता को निश्चित स्तर पर रखने के लिए जड़–क्षेत्र से नीचे जाना चाहिए। सिंचाई जल जितना अधिक लवणीय होगा उतना ही अधिक निक्षालन मांग होगी अर्थात् उतना ही अधिक पानी निक्षालन हेतु लगाना पड़ेगा। ग्रीष्म ऋतु निक्षालन के लिए अति उत्तम होती है। इस विधि में खेत को छोटे–छोटे टुकड़ों में विभाजित कर उसकी मेड़बंदी कर देते हैं, जिससे खेत में पानी पर्याप्त मात्रा में रुक सके। इसके पश्चात् खेत में पर्याप्त मात्रा में पानी भर दिया जाता है। यदि मृदा के नीचे कड़ी परत हो तो गहरी जुताई करनी चाहिए। यदि मृदा कणाकार, अत्यंत महीन हो तो जुलाई के समय खेत में बालू मिला देना चाहिए। इससे निक्षालन में आसानी होती है।

क्षार विनिमय की क्रिया में कैल्सियम, मैग्नीशियम तथा पोटैशियम आदि विनिमय धनायनों के साथ सोडियम भी मृदा में कोलाइडी कणों पर अधिशोषित हो जाता है। जैसे–जैसे मृदा

विलयन में सोडियम का सांद्रण बढ़ता जाता है। यह कोलाइडी कणों पर अधिशोषित सोडियम ज्यों का त्यों वहीं बना रहता है और मृदा पूर्व की भांति क्षारीय बनी रहती है। निक्षालन के कारण कोलाइडी कणों पर सोडियम की मात्रा अधिक होने से कोलाइडों का परिक्षेपण (dispersion) हो जाता है, जिसके परिणामस्वरूप मृदा में जल की पारगम्यता मंद पड़ जाती है।

आधिक्य लवणों के न्यूनीकरण की क्रिया होने से मृदा में कैल्सियम कार्बोनेट या कैल्सियम सल्फेट नहीं रह जाता है। विलेय लवणों के पूर्ण रूप से निक्षालन द्वारा अलग हो जाने से एक ऐसी अवस्था आ जाती है जब मृदा कोलाइड से विनिमेय सोडियम को विस्थापित करने के लिए क्षार नहीं बचते। इस स्थिति में विनिमेय सोडियम, जल अपघटित होकर सोडियम हाइड्रॉक्साइड देता है और जो हाइड्रोजन निकलती है, वह मृत्तिका (क्ले) की सतह पर अधिशोषित हो जाती है। इस प्रकार उत्पन्न सोडियम हाइड्रॉक्साइड, मृदा वायु की कार्बन डाईऑक्साइड के साथ क्रिया कर के सोडियम कार्बोनेट में बदल जाता है। ऐसी मृदा जिसमें एक बार निम्नीकरण हो चुका है, उसमें पुनः क्षार एकत्रित होने लगते हैं और सोडियम लवणों की मात्रा बढ़ने लगती है तो इस क्रिया को रिग्रेडेशन कहते हैं। इस क्रिया के फलस्वरूप मृदा का p.H. मान फिर अधिक होने लगता है।

लवणीय क्षारीय मृदाओं का प्रबंधन

स्मरण रहे, लवणीय–क्षारीय मृदाओं के सुधारने के पश्चात् यदि इनका प्रबंधन ठीक प्रकार से नहीं किया जाता है तो वे पुनः लवणी मृदाओं में परिणत हो जाती है। इसलिए यह आवश्यक है कि इनका प्रबंधन अच्छी प्रकार से किया जाए। खेतों की तैयारी करते समय जहां तक हो सके खेत को समतल रखा जाए। समतल खेत में सिंचाई का पानी समुचित रूप से बराबर बट

जाता है। खेत समतल न होने पर ऊंचे स्थानों पर पानी नहीं पहुंच पाता तथा जहाँ लवण निक्षालन द्वारा नीचे नहीं जा पाते जहां भूमि ढालू है वहाँ पर बांध बनाने चाहिए। क्षारीय मृदाओं की भौतिक दशा प्रायः खराब होती है। अतः गीली अवस्था में इनकी जुताई नहीं करनी चाहिए, नहीं तो सूखने पर ढेले बन जाते हैं। इन मृदाओं की जुताई उपयुक्त नमी की मात्रा होने पर ही करनी चाहिए।

इन मृदाओं में बीजों का अंकुरण एक समस्या है क्योंकि अंकुरण पर लवणों पर बुरा प्रभाव पड़ता है। क्यारी का आकार, पौधों का रोपण तथा सिंचाई की तकनीक ऐसी चाहिए जिससे बीज तथा पौधों की जड़ों के आसपास लवणों की मात्रा कम हो सके।

फसलों के चुनाव करते समय बीजों के अंकुरण पर विशेष ध्यान होना चाहिए। बाद की अवस्थाओं में फसल लवण–प्रतिरोधी होनी चाहिए। उदाहरण के लिए चुकंदर बाद की अवस्थाओं में अधिक प्रतिरोधी है परंतु प्रारंभ की अवस्था में अंकुरण के समय वह लवणों की उपस्थिति को सहन नहीं कर पाती है। धान की पछेती किस्में अगेती किस्मों की अपेक्षा अधिक लवण प्रतिरोधी होती हैं।

उन लवणीय मृदाओं में जहां सुधार का कोई तरीका सफलतापूर्वक नहीं अपनाया जा सकता वहां पर लवण सहिष्णु फसलें उगाई जा सकती हैं। यहां एक बात और महत्वपूर्ण है कि इन मृदाओं में सदैव फसलें उगाना चाहिए। इन्हें परती नहीं छोड़ना चाहिए। इन मृदाओं को खाली छोड़ने से ये अपनी अवस्था में वापस आ जाती हैं। उर्वरकों को उनकी निर्धारित मात्रा से अधिक देकर फसलों पर लवणता का असर कम किया जा सकता है। नाइट्रोजन की अधिक मात्रा (25 प्रतिशत) से फसल

अच्छी होती है। इन मृदाओ में पोटाश तथा फॉस्फोरसयुक्त उर्वरकों के प्रयोग से सोडियम क्लोराइड का पौधों द्वारा शोषण कम हो जाता है। अकार्बनिक उर्वरकों के साथ कार्बनिक खादों का भी प्रयोग करना चाहिए। अकार्बनिक उर्वरकों की मात्रा एक साथ न देकर कई बार में उचित समय पर देनी चाहिए।

लवणीय–क्षरीय मृदाओं के लिए उपयुक्त फसल–चक्र

1. धान–जौ–लोबिया
2. धान–सरसों
3. परती–सरसों–बाजरा–जुई
4. ढैंच (हरी खाद)–चुकंदर–मक्का–जौ
5. कपास–रिजका–मक्का–आलू
6. ग्वार–जौ–कपास–मेथी

जैविक पदार्थ सड़ने पर कार्बन डाई ऑक्साइड तथा कार्बनिक अम्ल पैदा करते हैं। ये अम्ल अविलेय कैल्सियम लवणों को विलेय करके मृदा की क्षारीयता को कम करते हैं। जैविक पदार्थ मृदा संरचना को सुधारते हैं तथा इनसे मृदा की पारगम्यता भी बढ़ जाती है। मुख्य रूप से प्रयोग किए जाने वाले जैविक सुधारक हैं– गोबर की खाद, शीरा, हरी खादें, फसलों के अवशेष, विभिन्न खरपतवार, जैसे सत्यानाशी।

जलमग्नता–हमारे देश में कुल 45 लाख हेक्टेयर भूमि जलभराव की समस्या से प्रभावित है। नहरी सिंचाई क्षेत्रों में यह समस्या लगभग 22 लाख हेक्टेयर में है। पिछले कुछ दशकों से विभिन्न नहर परियोजनाओं में जल भराव समस्या उग्र रूप लेने लगी है। देश की सभी प्रमुख नहरी परियोजनाओं के सिंचित एवं उसके निकट के भू–भागों में जलाप्लावन के साथ क्षारीयता व लवणीयता उत्पन्न होने से बहुधा यहाँ लाभप्रद रूप से खेती करना कठिन होता जा रहा है एवं कई इलाके तो भविष्य में खेती

के योग्य ही नहीं रह जायेंगे। इस समस्या से हमारे देश में 12–60 लाख टन खाद्यान्न का प्रतिवर्ष नुकसान होता है।

जलमग्न मृदाओं का प्रबंधन

इसमें कोई संदेह नहीं कि जलमग्न मृदाओं का उद्धार तभी संभव है जबकि पानी के स्रोत को नियंत्रित किया जाए एवं जल निकास की व्यवस्था की जाए। परंतु बहुत से क्षेत्रों में आर्थिक, प्राकृतिक या व्यावहारिक कारणों से ऐसा करना संभव नहीं हो पाता। ऐसी दशा में उन क्षेत्रों के प्रबंध का एकमात्र तरीका यह है कि वहाँ ऐसी फसलें उगायी जाएं जो जलाक्रांत अवस्था में भी कम से कम हानि उठाकर अच्छी उपज देने में समर्थ हों।

फसलों का चुनाव

पौधों की अंकुरण एवं जनन–अवस्था, जलाक्रांति के प्रति बहुत संवेदनशील होती है। इन अवस्थाओं में गहरे पानी में उपजने वाले धान की किस्में भी प्रभावित हो जाती हैं। विभिन्न फसलों की इन समस्याओं की संवेदनशीलता भिन्न–भिन्न होती है। जलाक्रांति का प्रकार, जल की गहराई आदि को ध्यान में रखकर ही फसलों का चुनाव करना चाहिए।

कुछ खास किस्म की फसलों की जलाक्रांति सहन करने की क्षमता अन्य फसलों से अलग होती है, दलहनी फसलें, मक्का एवं सब्जियाँ जलाक्रांति बिल्कुल नहीं सहन कर पाती हैं। धान में जलाक्रांति सहन करने की क्षमता अन्य फसलों की अपेक्षा अधिक होती है। जूट और ढैंचा में भी यह क्षमता ज्यादातर फसलों से अधिक होती है। मक्का की अपेक्षा ज्वार अधिक सहनशील है।

खेत की तैयारी एवं बोआई

खेत को समतल बनाना बहुत आवश्यक होता है, जहाँ मृदा जल निकट हो और उसके कारण नमी अधिक हो, वहाँ खेत को

जोतकर बिना पाटा दिए हुए छोड़ देने से काफी नमी वाष्पीकृत होकर उड़ जाती है।

बोआई समतल जमीन में न करके मेड़ों पर करना लाभदायक होता है। इससे जड़ों के आसपास हवा का संचार होता रहता है। ऐसी मृदाओं में बीज दर बढ़ा देने से लाभ होता है।

नियंत्रित सिंचाई

जहां कहीं भी जल जमाव की आशंका हो, सिंचाई के तरीके का भी सावधानी से चुनाव करना चाहिए। क्यारी विधि के स्थान पर कूँड़ विधि अपनानी चाहिए। जहाँ मिट्टी में नमी बराबर बनी रहती है, वहां ऐसे वृक्ष लगाये जाने चाहिए जिनके लिए जल की अधिक आवश्यकता होती है, तथा जो काफी मात्रा में पानी वाष्पन करते हैं जैसे यूकेलिप्टस आदि।

मृदा क्षरण– भारतवर्ष में 1210 लाख हेक्टेयर भूमि मृदा क्षरण से प्रभावित है। इसमें 830 लाख हेक्टेयर क्षेत्र जल भराव से, 250 लाख हेक्टेयर रासायनिक कारकों, 120 लाख हैक्टेयर वायु द्वारा तथा 11 लाख हेक्टेयर भूमि का क्षरण अन्य कारकों द्वारा होता है। एक अनुमान के अनुसार प्रतिवर्ष 54 से 84 लाख टन पोषक तत्वों का नुकसान होता है जो कि सीधे रूप से फसल उत्पादन में कमी के लिए जिम्मेदार है, साथ ही जल भंडारण स्रोतों में मिट्टी के इकट्ठा होने से उनकी जल संचयन क्षमता में प्रतिवर्ष 1 से 2 प्रतिशत की कमी हो रही है।

मृदा संरक्षण के उपाय

किसी उपयुक्त प्रक्षेत्र मृदा संरक्षण योजना के लिए प्रभावित क्षेत्र की मृदाओं के बारे में जानकारी प्राप्त करना आवश्यक होता है। मृदाओं के उपयुक्तता एवं उपयोगिता के आधार पर अलग–अलग भागों में बाँट लेना मृदा संरक्षण में सहायक होता है। मृदा संरक्षण के निम्न प्रतिकारकों को ध्यान में रखते हुए उनसे संबंधित सुझावों को ध्यान देना आवश्यक है:

1. जंगलों एवं उनसे संबंधित प्रतिकारक

जंगलों के संबंध में निम्नलिखित सुझाव दिए गए हैं–

(क) वर्तमान सभी जंगलों का बचाव।

(ख) बिना जुती हुई भूमियों में खेती न करना।

(ग) जंगलों के आस–पास मृदा क्षरित भूमियों का बचाव करना।

(घ) जलाऊ एवं इमारती लकड़ियों के लिए गाँवों में पेड़ों को लगाना।

(ड.) जंगलों में नये पेड़ों को लगाना।

2. कृषि–अयोग्य भूमि संबंधी प्रतिकारक

(क) जानवरों को ऐसे भूमियों में प्रवेश न करने देना।

(ख) प्रत्येक गाँव में चारागाह की व्यवस्था।

(ग) ऐसे भूमियों में पेड़–पौधों के लगाने की व्यवस्था।

(घ) जानवरों के लिए चारागाह तथा रहने की अलग से व्यवस्था करना।

3. कृषि–योग्य भूमियों संबंधी प्रतिकारक

(क) आवश्यकतानुसार बाँध व वेदिकाओं का निर्माण।

(ख) ढलाव वाले क्षेत्रों में कम खेती करना।

(ग) खाली भूमियों में दलहनी घास की फसलों को लगाना।

(घ) जोतों की चकबंदी तथा भूमिक्षरित भूमियों की ठीक ढंग से व्यवस्था करना।

(ड.) पट्टीदार खेती एवं उपयुक्त फसल–चक्र का उपयोग।

भूमि क्षरण के प्रतिकारकों को ध्यान में रखते हुए निम्नलिखित उपाय भूमि संरक्षण के लिए अधिक लाभदायक हो सकते हैं–

1. जल प्रवाह की गति को रोकना– भूमि क्षरण अधिक जल प्रवाह से ही होता है अतः विभिन्न प्रकार के ऐसे अवरोध जो

जल प्रवाह की गति को रोक सके, भूमि संरक्षण के लिए उपयुक्त होंगे। असामान्य सतह के लिए वेदिकाएं, मेंड़बंदी इत्यादि का प्रयोग करना चाहिए।

2. समतल भूमि का निर्माण– भूमि क्षरण को उत्प्रेरित करने में असमतल भूमि अधिक सहायक होती है। कृषि योग्य भूमियों में इस बात का प्रयास करना चाहिए जिससे उनकी सतह सदैव समतल बनी रहे। अतएव मध्यम वेदिकाओं का निर्माण, समोच्चन (कंटूरिंग), सीढ़ीनुमा वेदिका तथा प्रवणित जल मार्ग वेदिका के निर्माण से भूमि को ठीक किया जा सकता है।

3. पट्टियों में खेती– उन खेतों में जहाँ भूमि क्षरण की समस्या मुख्यतः जल के द्वारा होती है वहाँ आरोधी फसलों को एकांतर पट्टियों में उगाया जाना चाहिए। आरोधी फसलें एकांतर पट्टियों में बोयी जाएँ तो उनकी दिशा ढाल के विपरीत होनी चाहिए। ये फसलें अपधावन की गति को कम करने के साथ–साथ उसके द्वारा बहाकर लाई गई मिट्टी को संचित करने में भी सहायक होती हैं। आरोधी फसलों को बोने के लिए पट्टियों की चौड़ाई, ढाल की गहनता को देखकर रखना चाहिए।

4. बाँध बाँधना– जल द्वारा भूमि क्षरण को रोकने तथा अपधावन की गति को कम करने के लिए बाँधों का निर्माण आवश्यक होता है। बाँधों का निर्माण ढाल के प्रतिशत एवं भूमि के प्रकार पर निर्भर करता है। यह एक मेड़ से दूसरे मेड़ की दूरी पर निर्भर होनी चाहिए।

5. भू–परिष्करण– अत्यधिक भू–परिष्करण या असामान्य भू–परिष्करण भी भूमि क्षरण में सहायक होते हैं। भूमि के प्रकार एवं भूमि क्षरण की संभावनाओं को देखते हुए आवश्यकतानुसार ही भू–परिष्करण की क्रियाएं की जानी चाहिए। आमतौर पर

ग्रीष्मकालीन भू–परिष्करण की क्रियाएं वायु मृदा–क्षरण को प्रोत्साहित करती हैं।

6. फसल–चक्र तथा अवरोधी फसलें– फसल–चक्र तथा अवरोधी फसलें भी भूमि संरक्षण में सहायक होती हैं। एक ही फसल जिसकी भू–परिष्करण की आवश्यकता अधिक हो, बार–बार बोये जाने से भूमि क्षरण की संभावना बढ़ जाती है। अतः क्षेत्र एवं आवश्यकतानुसार फसलों के चयन में परिवर्तन करते रहना चाहिए। जहाँ तक संभव हो संभावित भूमि क्षरण वाली भूमियों को परती या खाली नहीं छोड़ना चाहिए।

7. वृक्षारोपण– भूमिक्षरित भूमियों में नए वृक्षारोपण से भूमि कटाव को रोका जा सकता है। वृक्षों से जो भूमि क्षरण प्रायः जल एवं वायु से होता है उसे वृक्षों से रोका जा सकता है। इसके साथ ही वृक्षों के कारण निकटवर्ती क्षेत्रों में वर्षा की संभावना बढ़ जाती है। पेड़–पौधों से बाढ़ के समय में भी जल के अपधावन की गति का अवरोध मिलता है। साथ ही साथ इनसे प्राप्त जीवांशों से मृदाकणों के संगठन में सुधार होता है।

8. घासरोपण– भूमि संरक्षण के उद्देश्य से घासों को लगाना घासरोपण कहलाता है। घास लगाने का सबसे अधिक महत्व तब होता है जब इन्हें भूमि संरक्षण के अन्य साधनों के साथ उपयोग में लाया जाता है। प्रायः इन्हें ढलान वाले क्षेत्रों में बनाये समोच्च निर्मितियों गई (कंटूर), बाँध व वेदिकाओं को सुरक्षित रखने के लिए लगाया जाता है। पट्टीदार खेतों में घासों का महत्व बहुत है क्योंकि ये घासें भूमि को ढँके रहती हैं और अपनी जड़ों के द्वारा मिट्टी को इस तरह पकड़कर रखती है कि पानी के बहाव से कटकर नहीं बहती।

सिंचाई जल की गुणवत्ता पर निम्नलिखित कारकों का प्रभाव पड़ता है–

1) सिंचाई जल में घुले लवणों की सांद्रता: 2250 माइक्रो मोज से अधिक चालकता वाले जल सिंचाई के लिए अनुपयुक्त होते हैं। 750 माइक्रो मोज विद्युत चालकता वाले जल से फसलों की सिंचाई की जा सकती है।

2) सोडियम, कैल्सियम और मैग्नीशियम की उपस्थिति: सोडियम की उपस्थिति के कारण सिंचाई जल हानिकारक माना जाता है परंतु सबसे हानिकारक जल में सोडियम की मात्रा, कैल्सियम और मैग्नीशियम के योग से अधिक पाई जाए तो ऐसा जल सिंचाई वाले स्थान को ऊसर बना सकता है।

3) बोरान की सांद्रता: तीन पी.पी.एम. (10 लाख भाग में 3 भाग) बोरान की उपस्थिति पर केवल सहिष्णु फसलें उगाई जा सकती है। एक पी.पी.एम. बोरान से कम मात्रा वाला जल सिंचाई के लिए सुरक्षित होता है।

सूक्ष्ममात्रिक तत्वों में बोरॉन एक ऐसा तत्व है, जिसकी सांद्रता मृदा और पौधे दोनों में ही अपेक्षाकृत कम पाई जाती है। आमतौर पर इसकी एक पी.पी.एम. मात्रा पौधों के लिए पर्याप्त होती है। बोरॉन की अधिक मात्रा पौधों के लिए विषाक्त हो जाती है। पौधे इस तत्व का अवशोषण बोरेट आयन के रूप में करते हैं।

वैसे तो बोरॉन सूक्ष्ममात्रिक पोषक तत्व है, किंतु बोरॉन की अधिक सांद्रता से पौधों पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। तीन पी.पी. एम. बोरॉन की उपस्थिति पर केवल सहिष्णु फसलें उगाई जा सकती हैं। एक पी.पी.एम. बोरॉन से कम मात्रा वाला जल सिंचाई के लिए सुरक्षित होता है।

4) कार्बोनेट तथा बाईकार्बोनेट की सांद्रता: सिंचाई जल में कार्बोनेट तथा बाईकार्बोनेट की मात्रा 2.5 मिली–तुल्य

प्रति लिटर से अधिक होने पर सिंचाई नहीं करनी चाहिए।

सेलीनियम– प्रकृति में सेलीनियम अपने तत्व रूप अथवा किसी एनॉयन के रूप में उपस्थित हो सकता है। कभी–कभी यह सेलेनाइट के रूप में जलयोजित आयरन ऑक्साइड के साथ भी पाया जाता है। इस रूप में यह पौधों के लिए उपलब्ध नहीं होता है वायुजीवी दशाओं में सेलीनेट के रूप में पौधों को उपलब्ध होता है।

सेलीनियम की अधिकता वाली मृदाएं सेलीनीफेरस मृदाएं कहलाती हैं। ऐसी मृदाओं में उगाई जाने वाली फसलों के उपभोग से मानव एवं पशु स्वास्थ्य पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। उत्तरी–पश्चिमी भारत में लवणधर (सेलीनीफेरस) मृदाओं के कुछ खंड देखे गए हैं।

सेलीनियम की विषाक्तता का प्रभाव चरागाह में चरने वाले पशुओं पर पड़ता है। इनकी विषाक्तता से पशुओं के बाल झड़ने लगते है, अधिक विषाक्तता की स्थिति में पूँछ भी झड़ने लगती है।

नाइट्रोजन उर्वरकों से पौधों पर विषाक्त प्रभाव– जल में नाइट्रोजन चार रूपों में रह सकता है– मुक्त अमोनिया गैस के रूप में, ऐल्बुमिनाइड नाइट्रोजन के रूप में, नाइट्रेट तथा नाइट्राइट के रूप में।

कार्बनिक पदार्थों के विघटन से अमोनिया गैस बनती है जो जल में विलीन रहती है किंतु जल को गरम करते ही यह गैस निकल जाती है जब जल में अमोनिया की मात्रा 0.12 पी.पी.एम. से अधिक होती है तो जल दूषित माना जाता है।

जल मे पोटैशियम परमैगनेट का क्षारीय विलयन करने या सल्फ्यूरिक अम्ल डालकर गरम करने पर जो अमोनिया निकले वह ऐल्बुमिनाइड नाइट्रोजन की सूचक है। इसकी मात्रा यदि

जल में 0.1 पी.पी.एम. से अधिक हो तो जल दूषित माना जाता है।

भौमजल में उपलब्ध अन्य, लवणों की भाँति नाइट्रेट के लवण प्रमुखतया चट्टानों से नही आते बल्कि वे भू–जल में पृथ्वी के भौमजलीय नाइट्रोजन–चक्र के माध्यम से प्रवेश करते हैं। भौमजल में नाइट्रोजन यौगिक मुख्यतः नाइट्रेट, नाइट्राइट और अमोनिया के रूप में मिलते हैं। जल के विश्लेषण में इनका आकलन जटिल आयन के रूप में या नाइट्रोजन अणु के रूप में किया जाता है। भूमि में नाइट्रोजन अनेक स्रोतों से प्रवेश करती है, कुछ पौधे जैसे अल्फा–अल्फा और दलहनी पौधे वायुमंडल से सीधे नाइट्रोजन का यौगिकीकरण (फिक्सेशन) करते हैं और तब वह इन पौधों के माध्यम से मृदा में प्रवेश करती है। यह नाइट्रोजन पौधों द्वारा ग्रहण कर ली जाती है परंतु बची हुई नाइट्रोजन जल में घुलकर मृदा द्वारा अवशोषित होकर अंततः भौमजल में मिल जाती है। मृदा नाइट्रोजन के अन्य स्रोतों में सड़े–गले पौधों, पशु–अवशेष और नाइट्रेट युक्त उर्वरक सम्मिलित हैं। इसके अतिरिक्त वाहितमल और उनके संग्रह क्षेत्रों से भूमि में रिसकर भौमजल को प्रदूषित करते हैं।

भौमजल स्रोत में नाइट्रेट की अधिक मात्रा चिंता का विषय है। पेयजल में नाइट्रेट की मात्रा 45 पी.पी.एम. से अधिक वांछनीय नहीं है क्योंकि इससे छोटे–छोटे बच्चों में मेटहीमोग्लोबैनीमिया या साइनोसिस या ब्लू बेबी सिंड्रोम रोग हो जाता है। इससे बच्चों की त्वचा हल्के नीले रंग की हो जाती है। नाइट्रेट द्वितीयक ऐमीन से क्रिया करके नाइट्रोसामीन जैसे विषैले यौगिक बनाते हैं जो कैंसरजनक है। पशुओं में इस रोग की प्रबल संभावना होती है। दूध देने वाले पशुओं में दुग्ध उत्पादन में कमी और गायों के गर्भ का गिर जाना नाइट्रेट के दुष्प्रभाव के दो प्रमुख लक्ष्य है।

वस्तुतः नाइट्रेट स्वयं में इतना अधिक हानिकारक नही है परंतु जब यह जल या भोजन के द्वारा शरीर में प्रवेश करता है तो मुख और आंतो में उपस्थित जीवाणुओं द्वारा नाइट्राइट में परिवर्तित कर दिया जाता है। नाइट्राइट एक प्रबल ऑक्सीकारक है जो हीमोग्लोबिन में उपलब्ध लोह को फैरस से फैरिक में बदल देता है जिसके परिणामस्वरूप हीमोग्लोबिन ऑक्सीजन ग्रहण करने की क्षमता खो देता है। जल के नाइट्रेट की मात्रा उबालकर दूर नहीं की जा सकती है। इसे दूर करने के लिए जल का विलवणन या आसवन करना आवश्यक है।

नाइट्रोजन का वाष्पीकरण द्वारा ह्रास

सूक्ष्म जीवों की क्रियाओं से उपलब्ध नाइट्रेट, नाइट्रोजन में परिणत हो जाते है एवं गैसीय रूप में वाष्पित हो जाते है। यह प्रक्रिया विनाइट्रीकरण कहलाती है। विभिन्न मृदाओं में विनाइट्रीकरण की दर मुख्यतः उनके नमी अंश, मृदा का पी.एच. मान (ph मान) कार्बनिक पदार्थ अंश और संरचना के अनुसार भिन्न–भिन्न होती है। जलमग्नता की स्थिति में अवायुजीवीय अवस्था उत्पन्न हो जाती है जिसके परिणामस्वरूप विनाइट्रीकरण अधिक होने से नाइट्रोजन की हानि अधिक होती है।

अध्याय – 4

उपसंहार

अधिक उपज देने वाली फसलों और संकरों के प्रचलन के बाद अधिक पैदावार लेने के लिए प्रतिस्पर्धा ऐसी बढ़ी कि हमारा ध्यान इस बात की ओर गया ही नहीं कि यह प्रणाली कब तक चल पायेगी। इसी का नतीजा है कि ये सारी प्रणालियाँ जवाब दे चुकी हैं और उत्पादकता के स्तर को घटाने वाली नई–नई समस्याएं उभरने लगी हैं। इस तरह की कुछ समस्याएं हैं – पोषक तत्वों की दक्षता में कमी, मिट्टी में उनके पोषक तत्वों का असंतुलन, मिट्टी के भौतिक, रासायनिक गुणों में प्रतिकूल परिवर्तन, पानी का दुरुपयोग, मिट्टी और पानी का प्रदूषण और कीटव्याधिक रोगों व खरपतवारों की सांठगांठ। इन समस्याओं से निपटने के लिए जहाँ हम एक ओर फसलों की सघनता का ध्यान रख रहे हैं, वही देश के विभिन्न भागों के लिए फलदार फसलों को शामिल करते हुए ऐसी फसल प्रणालियाँ विकसित करने लगे हैं जो हर हाल में टिकाऊ साबित हों। अधिक मूल्य वाली फसलों में चुने गए फसल–चक्रों में मुख्य रूप से सूरजमुखी, सोयाबीन, मूँगफली, सरसों और बासमती धान इत्यादि शामिल

किए गये हैं। इसी तरह कृषि की उत्पादकता और टिकाऊपन को ध्यान में रखते हुए समेकित पोषक प्रबंधन और समेकित कीट प्रबंधन की तकनीकों का अधिकाधिक प्रचलन किया जा रहा है। पानी की बचत के लिए कृषि में प्लास्टिक के उपयोग द्वारा छिड़काव एवं रिसाव सिंचाई प्रणाली के उपयोग की संभावनाओं पर भी हम विशेष ध्यान दे रहे हैं।

सघन कृषि प्रणालियों के कारण मौलिक संसाधनों का अंधाधुंध इस्तेमाल हुआ है और मिट्टी में फसल के अवशेष शायद ही छोड़े जाते हैं। इस तरह मिट्टी में जीवांश की कमी होने से उसकी उपजाऊ शक्ति दिनों दिन घटती जा रही है। इसी का नतीजा है कि गेहूँ–धान, इत्यादि मुख्य फसल आधारित चक्रों में उपज का स्तर एक सीमा तक बढ़ने के बाद अब ठहराव पर पहुँच गया है। दीर्घकालीन उर्वरता परीक्षणों से भी यह सिद्ध हुआ है कि अकार्बनिक खादों के साथ–साथ कार्बनिक खादों का उपयोग करने पर भी मिट्टी की उर्वरता को टिकाऊ स्तर पर बनाए रखा जा सकता है। चीन में गेहूँ–धान फसल चक्र में पिछले एक सौ साल से ज्यादा समय से उत्पादकता का ऊँचा स्तर बनाए रखने में इसीलिए सफलता मिल पाई, क्योंकि वहाँ नाइट्रोजन की आवश्यकता की पूर्ति के लिए 50 प्रतिशत से अधिक नाइट्रोजन कार्बनिक स्रोत से प्राप्त की गई। इसी फसल प्रणाली में हमारे यहाँ रासायनिक उर्वरकों के प्रयोग ने तीन दशकों में ही ठहराव की स्थिति उत्पन्न कर दी। इससे समेकित पोषक तत्व प्रबंधन के महत्व का पता लगता है।

इस तथ्य में कोई सन्देह नहीं कि हरित–क्रांति के दौरान देश में खाद्यान्न उत्पादकता में उल्लेखनीय वृद्धि हुई तथा अन्न की कमी से उबरने में सहायता मिली। परन्तु यह भी सच है कि निरन्तर सघन खेती अपनाने, रासायनिक उर्वरकों पर अति

निर्भरता तथा कार्बनिक खादों की सतत उपेक्षा के कारण मृदा की उर्वरा शक्ति व कार्बनिक अंश में कमी आ गई तथा मृदा के भौतिक, रासायनिक एवं जैविक गुणों पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ा है। रासायनिक उर्वरकों के अत्यधिक उपयोग के बावजूद फसल की उत्पादकता में कमी देखी जा रही है। अतः हमें अपनी वर्तमान कृषि प्रणाली में परिवर्तन करने की आवश्यकता है। कृषि उत्पादन की एक टिकाऊ व्यवस्था बनाए रखने के लिए रासायनिक उर्वरकों पर निर्भरता कम करते हुए पौधों के लिए आवश्यक पोषक तत्वों की आपूर्ति के अन्य विकल्पों को पोषक तत्व प्रबंधन में सम्मिलित करने की आवश्यकता है। अतः रासायनिक उर्वरकों के अतिरिक्त कार्बनिक स्रोत के माध्यम से पोषक तत्व आपूर्ति एक उचित विकल्प है। पोषक तत्वों के संतुलित प्रयोग के अलावा रासायनिक व कार्बनिक/जैविक स्रोतों का समन्वित प्रयोग व उनकी उपयोग क्षमता में वृद्धि द्वारा ही हम टिकाऊ कृषि की ओर अग्रसर हो सकते हैं।

फसलों के उत्पादन–स्तर में आ रही गिरावट के तथा अन्य कृषिगत चुनौतियों में अप्रत्याशित वृद्धि के कारण टिकाऊ खेती की अवधारणा में प्रायः तीन लक्ष्य सम्मिलित किए जाते हैं: पर्यावरण स्वास्थ्य, आर्थिक लाभप्रदता तथा सामाजिक समरसता। ये तीनों लक्ष्य तभी प्राप्त किए जा सकते हैं जब हम कृषि संसाधनों का प्रयोग तथा प्रबंधन इस प्रकार करें जो हमारी वर्तमान आवश्यकताओं को पूरा करते हुए भावी पीढ़ी को बिना किसी व्यवधान के सतत प्राप्त होती रहें। भारतीय कृषि में काफी परिवर्तन आए हैं। हरित–क्रांति की सफलता नई तकनीकों, मशीनीकरण, रासायनिक उर्वरक तथा उन्नतशील बीजों की देन है, जिनकी महत्वपूर्ण भूमिका को नकारा नहीं जा सकता। आज हम फसल उत्पादन में रासायनिक उर्वरकों एवं कीटनाशियों के

योगदान से फसलों की पैदावार में महत्वपूर्ण वृद्धि के साथ ही खाद्य उत्पादन में आत्मनिर्भर हो पाए हैं। एक तरफ, इस प्रकार के परिवर्तनों से खेती में अनेक कृषिगत जोखिमों में कमी तथा सामाजिक एवं आर्थिक स्तर पर धनात्मक प्रभाव पड़ा है वहीं दूसरी ओर प्राकृतिक संसाधनों का अविवेकपूर्ण एवं अनैतिक दोहन, खाद्यान्न उत्पादन में अत्यधिक उर्वरक एवं पीड़कनाशी रासायनों के उपयोग से प्राकृतिक असंतुलन तथा कृषि पारिस्थितिक–तंत्र में परिवर्तन आया है।

फसल सुरक्षा हेतु भारी मात्रा में कीट, रोग एवं खरपतवारनाशियों के उपयोग से कृषि उत्पादों, खाद्य पदार्थों, सब्जियों, दुग्ध एवं पेयजल में विषैले रसायनों की मात्रा अनुमत सीमा से कई गुना बढ़ी है। कृषि पारिस्थितिक–तंत्र में भौतिक, जैविक सस्य परिवर्तनों के कारण तरह–तरह के कीड़ों तथा बीमारियों के प्रकोप में अभूपूर्व वृद्धि हुई है।

परंपरागत कृषि के साथ साथ हमें उच्च तकनीक की सहायता से कृषि से प्राप्त होने वाले उत्पादन को बढ़ाने के प्रयास करने की आवश्यकता है क्योंकि हमारे पास भूमि का क्षेत्रफल निरंतर घट रहा है तथा जनसंख्या तेजी से बढ़ रही है। ऐसे में बढ़ते मुँहों और घटते भोजन की खाई को पाटना आसान काम नहीं है। इसके लिए हमें नियोजित विकास के रूप में टिकाऊ खेती करने की आवश्यकता है। टिकाऊ खेती का आशय है – आधारभूत पारिस्थितिक प्रणालियों की जीवन धारण क्षमता की सीमा में रहते हुए व्यवहार्य कृषि अपनाना। इसमें खेती–बाड़ी, पशुपालन, मधुमक्खी पालन, केंचुआ पालन इत्यादि इस तरह से किए जाते हैं कि विकास तो हो पर विनाश न हो। टिकाऊ खेती का तात्पर्य मुख्यतः खाद्य–उत्पादों की गुणवत्ता में सुधार, प्राकृतिक संसाधनों एवं पर्यावरणीय पारिस्थितिकी घटकों का संरक्षण तथा

खेती का स्तर टिकाऊ रखते हुए खाद्य–सुरक्षा का लक्ष्य हासिल करने से है, जिसके अंतर्गत जल संसाधनों का समुचित उपयोग एवं प्रबंधन, मृदा उर्वरता का समुचित उपयोग एवं संरक्षण, फसल सुरक्षा एवं भारी धातुओं का जैविक समाधान, खाद्य पोषण सुरक्षा हेतु जैव विविधता का संरक्षण, फसल खेती प्रणाली तथा उत्पादों में विविधीकरण तथा ऊर्जा सुरक्षा एवं प्रदूषण में कमी हेतु वैकल्पिक ऊर्जा का प्रयोग इत्यादि का समावेश आवश्यक है। अनुसंधान रिपोर्टों व समाचारों में भूमि की जैविक कार्बन मात्रा में कमी, उर्वराशक्ति क्षीणता एवं उत्पादन में ठहराव होने की बातें आती रहती हैं, जो स्पष्ट संकेत देते हैं कि उत्पादन प्रणाली में स्थायित्व के, साथ–साथ भूमि में जैविक कार्बन मात्रा की वृद्धि के लिए आनुपातिक तथा संस्तुत मात्रा में उर्वरकों के साथ कार्बनिक खादों जैसे कंपोस्ट, हरी खाद, वर्मी कंपोस्टिंग के नवीनतम ज्ञान के साथ उपयोगी तकनीकी प्रसार व उसके प्रयोग के लिए प्रोत्साहित करना होगा। आज के साथ उपयोगी तकनीकी प्रसार व उसके प्रयोग के लिए प्रोत्साहित करना होगा। आज बाजारों में जैव उर्वरकों के संशोधित कल्चर जैसे दलहनी फसलों के लिए राइजोबियम, एजोटोबैक्टर एवं धान की फसलों के लिए नील–हरित शैवाल, एजोला–एनाबीना इत्यादि आसानी से उपलब्ध हैं जिनके प्रयोग से लगभग 20–60 कि.ग्रा. तक नाइट्रोजन की पूर्ति वायुमंडल से हो जाती है।

फसल सुरक्षा में रसायनों के असंतुलित प्रयोग से विषैले घातक रसायनों एवं भारी धातुओं जैसे–आर्सेनिक, कैडमियम, मरकरी, लेड, कॉपर तथा क्रोमियम की मात्रा में मानक सीमा से कई गुना अप्रत्याशित वृद्धि हुई है। भारी धातुओं पर एकीकृत पर्यावरण परियोजना वर्ष 1991 व 1996 मे प्रस्तुत रिपोर्ट के अनुसार खाद्य–श्रृंखला में समाहित होकर इन विषैली धातुओं

को सांद्रण मानव शरीर में बढ़ रहा है। इनके घातक प्रभावों के कारण कई प्रकार की बीमारियां पैदा हो रही हैं जिनका इलाज भी संभव नहीं है। इतना ही नहीं, मिट्टी में ये रसायन तालाबों, झीलों में जलीय–जीवों को भी प्रभावित करते हैं।

धातु प्रदूषण की प्रकृति तथा उनके स्रोत से धातुओं के पर्यावरण में पहुंचने के बाद उनका निस्तारण मशीनी अथवा रासायनिक विधियों से करना बड़ा जटिल तथा काफी खर्चीला होने के साथ पर्यावरण संगत नहीं है। पर्यावरण वैज्ञानिकों व वनस्पति–शास्त्रियों ने बहुत से ऐसे पौधों का विकास कर लिया है जो संदूषित क्षेत्रों से भारी धातुओं के साथ–साथ अन्य कार्बनिक तथा अकार्बनिक प्रदूषकों को अपने ऊतकों में 10 से 100 गुना तक संचयन की क्षमता रखते हैं। जैसे–स्थलीय पौधों में ब्रेसिका, जुंसिया, थेलेस्पी केरूयोसेंस, कारमिनीप्सिस हैलरी, डयूनेलिला, सनफ्लावर एवं मैकेडेगिया, न्यूरोपिया तथा जलीय पौधों में हाइड्रिला वर्टीसिलेटा, पिस्टिया स्ट्रेटिओटस, वैलेसनेरिया स्पाइसरेलिस, ब्रेसिका मोनेराई, पोटेमोजोटोन क्रिस्पस निलंबो न्यूसिपेया इत्यादि प्रमुख हैं। इनका प्रयोग पानी, मिट्टी व वायु से संदूषणकारी तत्वों की सफाई एवं प्रदूषण नियंत्रण के लिए पर्यावरण संगत व अति महत्वपूर्ण विकल्प के रूप में वरदान सिद्ध हो सकता है।

पर्यावरण तथा पारिस्थितिकी संतुलन बनाये रखने के लिये एकीकृत नाशीजीव प्रबंधन एक महत्वपूर्ण विकल्प बनकर सामने आया है। एकीकृत नाशीजीव प्रबंधन में कीट नियंत्रण की सभी विधियों को सम्मिलित रूप में उपयोग करके नाशीजीवों की संख्या को आर्थिक हानि स्तर के नीचे रखा जाता है। इसमें प्राकृतिक शत्रुओं (मित्र कीटों) को प्रयोग में लाया जाता है। इनमें से अधिकाधिक कीटों, फफूँदों, जीवाणुओं तथा वनस्पतियों पर आधारित उत्पाद हैं जो भूमि व जल के साथ व्यवस्थित होकर

जैविक क्रिया का अंग बन जाते हैं। इसमें ट्राईकोग्रामा अंड–परजीवी ट्राईकोकार्ड, न्यूक्लियर पालि हाइड्रोसिस वायरस शुंडी–परजीवी तरल वायरस कण, वैसिलस थुरेजिंएसिस बैक्टीरिया जनित कीटनाशक इत्यादि को प्रयोग में लाया जाता है। यह कम खर्च वाली आर्थिक रूप में युक्तिसंगत फसल सुरक्षा प्रणाली है। इनका प्रयोग पर्यावरण, मानव तथा पशुओं के लिये काफी सुरक्षित है क्योंकि ये मिट्टी के साथ मिलकर 20–30 दिन में पूर्णतः अपघटित हो जाते हैं।

कृषि को "विज्ञान पर आधारित उद्योग" मानकर चलाने की आवश्यकता है। कृषि को भी वे सभी सहायता मिलनी चाहिए जो उद्योगों को मिलती हैं। तभी कृषि का सर्वगीण विकास संभव है। विकसित देशों की भांति एक ही स्थान पर सभी निवेशों की उपलब्धि के साथ वैज्ञानिकों की सलाहों पर आधारित कृषि के दिन अब निकट हैं। मानव स्वास्थ्य एवं चिकित्सा के लिए "नर्सिंग होम" की भांति कृषि क्लीनिक "कृषि निवेश केंद्र" "कृषि व्यापार केंद्र" तथा "फूड पार्क" जैसे प्रतिष्ठानों का प्रचलन अब दूर नहीं है। यह प्रणाली कम भूमि वाले लघु तथा सीमांत कृषकों के लिए अत्यंत उपयोगी सिद्ध होगी।

कृषि के बुनियादी साधन के रूप में मृदा का महत्व सभी को विदित है। मृदा के सही उपयोग के लिए एक राष्ट्रीय नीति बनाने की आवश्यकता है। मृदा का अकृष्य उपयोग, बंजर–परती मृदा के सही विकास, मृदा एवं जल संसाधनों के दोहन आदि से संबंधित कोई नीति नहीं है। यह मानवता के लिए भावी संकट उत्पन्न कर सकता है। विकसित देशों में भूमि संरक्षण संबंधी कानून बने हैं और उनका भलीभांति अनुपालन किया जाता है। हमारे यहाँ इस तरह के कोई कानून/नीति नहीं है। हमें भी विकसित देशों की भांति मृदा संरक्षण संबंधी कानून/नीति बनाकर

उनका अनुपालन सुनिश्चित कराने की आवश्यकता है। स्मरण रहे कि मानव समाज की जरूरत केवल अनाज तक ही सीमित नहीं है। हमें आवास के लिए भूमि चाहिये, पशुओं के लिए चारा चाहिए। ईधन आदि की जरूरत भी है, इमारती लकड़ी आदि की जरूरत भी है। इसी प्रकार विविध कृषि कार्यों के लिए लकड़ी चाहिए। तात्पर्य यह है कि कृषि क्षेत्रफल में और वृद्धि करना असंभव है। इसके मात्र दो हल हो सकते हैं। पहला, खाद्यान्न फसलों की उत्पादकता बढ़ाकर अधिक पैदावार लेना और दूसरा हल है, विभिन्न राज्यों में लाखों हेक्टेयर बेकार बंजर/ऊसर भूमि को उपजाऊ बनाकर अनाज पैदा करना।

संदर्भ–सूची

1. मिश्र, शिवगोपाल एवं दिनेश मणि (1994) मृदा प्रदूषण, प्रकाशकः ज्ञानगंगा, 205–चावडी बाजार, दिल्ली–06

2. मिश्र, शिवगोपाल एवं दिनेश मणि (1993) प्रदूषित मृदा, प्रकाशकः पुस्तकायन, 2/4240ए, अंसारी रोड, नई दिल्ली–02

3. दिनेश मणि (2005) मृदा एवं पादप पोषण, प्रकाशकः वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग, नई दिल्ली

4. दिनेश मणि (2013) मृदा संरक्षण एवं प्रबंधन, प्रकाशकः वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग, नई दिल्ली

5. दिनेश मणि (1998) पर्यावरणीय प्रदूषणः नियंत्रण एवं प्रबंधन, प्रकाशकः वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग, नई दिल्ली

6. दिनेश मणि (1997) अपशिष्ट प्रबंधन, प्रकाशकः वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग, नई दिल्ली

7. दिनेश मणि (2015) उर्वरक एवं पोषण, प्रकाशकः इंस्टीट्यूशनल एरिया सेक्टरा 62 नोएडा (उ.प्र.)

8. रघुवंशी अरुण एवं रघुवंशी चित्रा, लेख (2005) पर्यावरण तथा प्रदूषण, म. प्र. हिंदी अकादमी, भोपाल (म.प्र.)

9. दिनेश मणि (2009) भूमि संरक्षण, आइसेक्ट भोपाल

10. मिश्र, शिवगोपाल (2013) औद्योगिक प्रदूषण, उमेश प्रकाशन, इलाहाबाद, (उ.प्र.)

11. मिश्र, शिवगोपाल (2013) मृदा परिचय, विज्ञान प्रसार, नोएडा, (उ.प्र.)

12. मिश्र, शिवगोपाल (2012) खतरे बदलते पर्यावरण के, प्रकाशकः कृतिका पब्लिकेशंस, नई दिल्ली।

परिशिष्ट

अ– उपयोगी सारणियाँ

सारणी–1 अनुपचारित मल–जल का विश्लेषण

अवयव	परास
पी–एच. मान (pH मान)	6.8–7.8
विद्युत चालकता 10^6, 25^0 सें.ग्रे.	800–2500
बी.ओ.डी. 5 दिन 20^0 सें ग्रे.	80–600
कैल्सियम (पी.पी.एम.)	20–60
मैग्नीशियम (पी.पी.एम.)	10–40
सोडियम (पी.पी.एम.)	70–360
पोटैशियम (पी.पी.एम.)	20–120
बाइकार्बोनेट्स (पी.पी.एम.)	240–350
क्लोराइड (पी.पी.एम.)	40–600
सल्फेट (पी.पी.एम.)	25–125
नाइट्रेट्स (पी.पी.एम.)	0–10
बोरान (पी.पी.एम.)	0.30–1.20
विभिन्न सिलीकेट्स (पी.पी.एम.)	15–35

सारणी 2 सीवेज स्लज में भारी धातुओं की औसत सांद्रता

भारी धातु	सांद्रता (पी.पी.एम. में)
मरकरी	4–320
सेलीनियम	1–3.9
क्रोमियम	267–3,590
कोबाल्ट	5.4–10.8
आयरन	5,200–23,100
एंटिमनी	2.9–9.3
कैडमियम	18
लेड	2,000–8,000

सारणी–3 मनुष्य के लिए कुछ पीड़कनाशियों की प्रतिदिन अधिकतम स्वीकार्य सांद्रता
(मि.ग्रा./कि.ग्रा. शरीर भार)

पीड़कनाशी	प्रतिदिन अधिकतम स्वीकार्य सांद्रता (मि.ग्रा./कि.ग्रा.)
कार्बारिल	0.01
क्लोरडेन	0.001
क्लोरपायरोफॉस	0.0015
डी.डी.टी.	0.005
डायजिनान	0.002
डाइक्लोरवॉस	0.004

डाइमेथोएट	0.02
एल्ड्रिन	0.0075
हेप्टाक्लोर	0.0005
मेलाथियान	0.02
मेथाक्सीक्लोर	0.1
मोनोक्रोटोफॉस	0.0003
पेराथियान	0.005
फासेलोन	0.006
फास्फैमिडान	0.001

सारणी–4 पीने के पानी में विभिन्न लेश तत्वों की अधिकतम स्वीकार्य सांद्रता (माइक्रोग्राम/ली.)

लेश तत्व	अधिकतम स्वीकार्य सांद्रता (माइक्रोग्राम/ली.)
मरकरी	1
कैडमियम	10
सेलीनियम	10
आर्सेनिक	50
क्रोमियम	50
कॉपर	50
मैंगनीज	50
जिंक	50
लेड	100
आयरन	100

सारणी–5 भारत में पीने के पानी की आपूर्ति में लेश तत्वों (धातुओं) का सांद्रता–परास

तत्व या धातु	न्यूनतम (पी.पी.एम.में)	
	न्यूनतम	अधिकतम
कॉपर (Cu)	~ 0.002	0.45
मैंगनीज (Mn)	~ 0.002	0.12
जिंक (Zn)	0.004	0.59
आयरन (Fe)	0.008	0.40
कोबाल्ट (Co)	< 0.0002	0.073
क्रोमियम (Cr)	~ 0.002	0.05

सारणी–6 सिंचाई जल में लेश तत्वों की संस्तुत अधिकतम सांद्रता

तत्व	संस्तुत अधिकतम सांद्रता (मिग्रा./लि.)
एल्युमिनियम	5.00
आयरन	5.00
लेड	5.00
फ्लुओराइड	1.00
जिंक	2.00
कॉपर	0.20
मैंगनीज	0.20
निकैल	0.20
आर्सेनिक	0.10

बेरीलियम	0.10
क्रोमियम	0.10
कोबाल्ट	0.50
सेलीनियम	0.02
कैडमियम	0.01
मालिब्डिनम	0.01

सारणी–7 कुछ व्यापारिक पेस्टीसाइडों की अधिकतम स्वीकार्य सांद्रता

	पीड़कनाशी	खाद्य पदार्थ	अधिकतम स्वीकार्य सांद्रता (मि.ग्रा/कि.ग्रा.)
1.	आर्गेनोक्लोरीन कीटनाशी		
	एल्ड्रिन अथवा डाइएल्ड्रिन	पालक, मेथी, धनिया, आलू, खीरा, फूलगाभी, क्लस्टरबीन	0.1
	बी.एच.सी.	पालक, मेथी, धनिया, खीरा, फूलगोभी	3.0
	डी.डी.टी.	आलू, गाजर, पातगोभी, पालक, फूलगोभी, सेम मेथी, टमाटर, बैंगन खीरा	1.0 7.0

	हेप्टाक्लोर	पालक, मेथी, धनिया क्लस्टरबीन खीरा, फूलगोभी	0.1 0.05
	लिंडेन	पालक टमाटर, गाजर, मेथी, धनिया, सेम, पातगोभी, फूलगोभी, खीरा, टमाटर गाजर	2.0 3.0 0.5 0.2
2.	**आर्गेनोफास्फेट कीटनाशी**		
	कलोरपायरोफॉस	मिर्च तथा टमाटर	
	डाइमेथोएट	स्ट्रोबेरी	
	फेनाइट्रोथियॉन	गेहूँ धान	
	मेलाथियान	राई की भूसी तथा गेहूँ	
	फोरेट	जौ, लोबिया, बैंगन, अंगूर, मक्का, आलू, ज्वार, सोयाबीन, चुकंदर, अंडा, मांस तथा दूध	0.05
3.	**कार्बामेट कीटनाशी**		
	कार्बरिल	जानवरों तथा बकरियों का गोश्त	0.2

4.	डाइथायोकार्बामेट कवकनाशी		
	केप्टान	सेब, नासपती	25.0
	फर्बेम	आलू,	0.1
	मेनेब	गेहूँ	0.2
	मेनकोजेब	सेम, गाजर, खीरा	0.5
	प्रापिनेब	केला, चेरी, चौलाई, तरबूज	1.0
	थीरम	सेब, पीच, नासपती	3.0
	जिनेब	स्ट्रोबेरी तथा टमाटर	3.0
	जीरम	काली मिर्च, सेलेरी, अंगूर	5.0

सारणी–8 विभिन्न प्रदूषकों द्वारा पौधों में उत्पन्न विषैले लक्षण

तत्व	विषैले लक्षण
एल्युमिनियम (Al)	चित्तीदार धब्बे पड़ना।
कोबोल्ट (Co)	पत्तियों में सफेद मृत धब्बे पड़ना।
कैडमियम (Cd)	पत्तियों की नसों के बीच पीत–श्वेत पर्णहरिम (Chlorophy ll) रहित धब्बे पड़ना जो आयु के साथ लाल भूरे रंग में परिवर्तित हो जाते हैं।
क्रोमियम (Cr)	हरी नसों के साथ पीली पत्तियों तथा निचली पत्तियों पर शुष्क मृत धब्बे पड़ना।

आयरन (Fe)	वृद्धि रुकना, रेशेदार जड़ें, जड़–दुर्बलता।
मैंगनीज (Mn)	मुड़ी हुई पर्णहरिमा रहित पत्तियाँ तथा पत्तियों के किनारें पर मृत क्षेत्र।
मोलिब्डिनम (Mo)	रूकी हुई वृद्धि, पीला–नारंगी रंग।
निकेल (Ni)	पत्तियों पर सफेद मृत धब्बे अथवा पर्णहरिमारहित धब्बे, असामान्य रूप में वृद्धि।
जिंक (Zn)	हरी नसों से युक्त पणहरिमारहित पत्तियाँ, सफेद बौने रूप में, पत्तियों के सिरे पर मृत क्षेत्र।

सारणी–9 विभिन्न खाद्यान्नों में डी.डी.टी. की मात्रा (मि. ग्रा./कि.ग्रा.)

	उत्तर प्रदेश	पंजाब	हरियाणा	आंध्र प्रदेश
गेहूँ	0.4–10	0–6	0.4–10	–
दालें	10–175	0–102	10–175	0–8
तिलहन	–	0–13	–	–
सब्जियाँ	–	0–1.1	–	0–10
दूध	–	0.2–27	–	0–5
मक्खन	1.25–2.12	0.3–8	1.25–2.12	0.03–3.4

सारणी–10 सौंदर्य और स्वाद से संबंधित पदार्थों की मात्रा से संबंधित निर्देशित मान

पदार्थ	ग्राइड लाइन वैल्यु (मि.ग्रा. / लीं)
एल्यूमीनियम	0.2
क्लोराइड	250.0
कॉपर कलर	15.0
कॉपर	1.0
कठोरता	500.0
लोहा	0.3
मैंगनीज	0.1
पी.एच. (pH)	6.5–8.5
कुल विलेय लवण	1000.0
सल्फेट	400.0
गँदलापन	5.0
जिंक	5.0

सारणी–11 विश्व स्वास्थ्य संगठन द्वारा स्वास्थ्य पर प्रभाव डालनेवाले कार्बनिक पदार्थों का दिशा निर्देश

क्र. सं.	अवयव	मात्रा (मि. ग्रा. / ली.)
1	एल्ड्रिन व डाइल्ड्रिन	0.00003

2	बेंजीन, 1,2—डाईक्लोरोएथेन, पेंटाक्लोरोफिनाल, टेट्राक्लोरोएथेन व 2,4, 6,— ट्राईक्लोरोबेंजीनाल	0.01
3	बेंजो—पायरीन व हेक्साक्लोरोंबेंजीन	0.00001
4	कार्बन टेट्राक्लोराइड व लिंडेन	0.003
5	क्लोरोफॉर्म	0.03
6	2,4 डी (क्लोरोफिनॉक्सी)	0.1
7	डी.डी.टी.	0.001
8	1,1—डाईक्लोरोएथेन	0.0003
9	हेप्टाक्लोर व हेप्टाक्लोर इपोक्साइड	0.0001
10	मेथॉक्सीक्लोर	0.03

सारणी—12 फ्लुओराइड से शरीर के विभिन्न अंगों पर पड़नेवाले दुष्प्रभाव

फ्लुओराइड की मात्रा या खुराक (मिग्रा./प्रति लीटर)	माध्यम	प्रभाव
0.002	वायु	वनस्पति के लिए हानिप्रद
1.0	जल	दाँतों का
2 और 2 से अधिक	जल	दाँतों का बदरंग पड़ना

8.0	जल	अस्थिरोग
20 से 80 प्रतिदिन या अधिक	जल और वायु	थायंड़ापन
50	भोजन और	थॉयराइड
100	भोजन और	वृद्धि में अवरोध
125 से अधिक	भोजन और	गुर्दे में परिवर्तन
2.5 से 5 ग्राम	अत्यधिक खुराक	मृत्यु संभव

सारणी–13 सिंचाई जल के लिए निर्देशित मान

पैरामीटर	उचित	मध्यम उचित	अनुचित
विद्युत चालकता (मिली साइमंस प्रति लीटर ms/m)	25	25–75	>75
सोडियम अधिशोषण अनुपात (SAR)	<10	10–18	>18
सोडियम	3	3–9	>9
अवशेष सोडियम कार्बोनेट (me/L)	<1.25	1.25–2.5	>2.5
बाईकार्बोनेट (me/L)	<1.5	1.5–8.5	>8.5
बाईकार्बोनेट (me/L)	<5.0	5–30	>30
बोरॉन (me/L)	<0.75	0.75–2.0	>2
क्लोराइड (me/L)	< 4.0	4.0–10	>10

फ्लोराइड (me/L)	<1.0	1.0–15	>15
पी.एच.	6.5–8.4	0–5	>9.5

स्रोतः खाद्य एवं कृषि संगठन FAO (1994)

सारणी–14 सिंचाई जल में सूक्ष्ममात्रिक तत्वों की अधिकतम संस्तुत सांद्रता

तत्व	मात्रा (मि.ग्रा./लीटर)
मैंगनीज	0.2
लैड	5.0
मॉलिब्डिनम	0.01
निकैल	0.2
सेलीनियम	0.02
एल्युमीनियम	5.0
आर्सेनिक	0.1
वैनेडियम	0.1
कॉपर	0.2
कैडमियम	0.01
कोबाल्ट	0.05
आयरन	5.0
जिंक	2.0

स्रोतः नेशनल एकेडमी ऑफ साइंसेज (1972)

शब्द-सूची

absorption	अवशोषण
acid rain	अम्ल वर्षा
activated sludge	सक्रियत आपंक
activity	सक्रिनिता
aerobic bacteria	वायुजीवी जीवाणु
anaerobic bacteria	अवायुजीवी जीवाणु
agricultural residue	कृषि अवशेष
agricultural waste	कृषिजन्य अपशिष्ट
algae	शैवाल
alkalinity	क्षारीयता
amendment	संशोधन
ameliorant	सुधारक
bacteria	जीवाणु
bioconcentration	जैव सांद्रता
biogas	बायोगैस, जैव संहति
biochemical oxygen demand	जैव रासायनिक ऑक्सीजन माँग
blue green algae	नीलहरित शैवाल
calcium	कैल्सियम
cadmium toxicity	कैडमियम विषाक्तता
climate	जलवायु
compost	कंपोस्ट
concentration	सांद्रता

conservation	संरक्षण
contamination	संदूषण
crop	फसल / शस्य
crop rotation	फसल आवर्तन / शस्य आवर्तन
dangerous waste	खतरनाक अपशिष्ट
density	घनत्व
detergent	अपमार्जक
dilution	तनूकरण
domestic sludge	घरेलू आपंक
domestic sewage	घरेलू वाहित जल
domestic waste	घरेलू अपशिष्ट
dry sludge	शुष्क आपंक
ecology	पारिस्थितिकी
ecosystem	परितंत्र, पारिस्थितिकी तंत्र
effluent	बहिःस्राव
element	तत्व
energy	ऊर्जा
environment	पर्यावरण
erosion	क्षरण
essential element	आवश्यक तत्व
fertility	उर्वरता
fertilizer	उर्वरक
forest	वन
fungus	कवक
fungicide	कवकनाशी

green house effect	ग्रीनहाउस प्रभाव
green manure	हरी खाद
harmful effect	हानिकारक प्रभाव
herbicide	शाकनाशी
heavy metal	भारी धातु
indicator plant	सूचके पादप
industry	उद्योग
Industrial waste	औद्योगिक अपशिष्ट
insecticide	कीटनाशी
interaction	अन्योन्य क्रिया
integrated	एकीकृत
lead	लेड/सीसा
manure	खाद
mercury	मरकरी, पारा
metallic	धात्विक
metabolism	उपापचय
microorganism	सूक्ष्मजीव
mineralisation	खजिनीकरण
monitoring	मानीटरन
nature	प्रकृति
nervous system	तंत्रिका तंत्र
non-metallic	अधात्विक
nuclear waste	नाभिकीय अपशिष्ट
nutrient	पोषक तत्व
organic matter	कार्बनिक पदार्थ

pathogenic bacteria	रोगजनक जीवाणु
permissible concentration limit	अनुमत सांद्रण सीमा
phosphatic fertilizer	फास्फेटी उर्वरक
pollutant	प्रदूषक
pollution	प्रदूषण
radiation	विकिरण
radioactive element	रेडियोसक्रिय तत्व
radioactivity	रेडियोसक्रियता
respiratory system	श्वसन तंत्र
residue	अवशेष
rubbish	कूडा–करकट
sedimentation	अवसादन, तलछटीकरण
sewage	वाहितमल
sludge	आपंक
solid waste	ठोस अपशिष्ट
soil erosion	मृदा अपरदन
soil fertility	मृदा उर्वरता
soil pollution	मृदा प्रदूषण
system	तंत्र
temperature	तापमान
toxicity	आविषता
toxic element	आविषी तत्व
underground water	भूमिगत जल
vegetation	वनस्पति
water hyacinth	जलकुंभी

water pollution	जल प्रदूषण
weed	खरपतवार
zinc	जिंक

शब्दावली

हिंदी–अंग्रेजी

अंतर्ग्रहण	intake
अधात्विक	non metallic
अधिशोषित	adsorbed
अधिशोषण	adsorption
अनुमत सीमा	permissible limit
अनुशंसित मात्रा	recommended dose
अन्योन्य क्रिया	interaction
अपचयन	reduction
अपमार्जक	detergent
अपशिष्ट पदार्थ	waste
अमोनीकरण	ammonification
अम्लीय	acidic
अम्ल वर्षा	acid rain
अवशेष (अवशिष्ट)	residue
आपंक	sludge
अवायुजीवी जीवाणु	anaerobic bacteria
आविषता	toxicity
उद्ग्रहण	uptake
उपचारित वाहितमल	treated sewage
उपभोग	consumption
उपयोग	utilization
उपलब्ध	available
उपलब्धता	availability

उपापचय	metabolism
उत्पादकता	productivity
उत्पादक	producer
उत्पादन	production
उदासीनीकरण	neutralization
उर्वरता	fertility
ऊतक	tissue
औद्योगिक स्रोत	industrial source
औद्योगिक बहिःस्राव	industrial effluent
एकीकृत	intergrated
कूडा–करकट	rubbish
कर्षण क्रियाएं	tillage operations
कवक	fungi, fungus
कवकनाशी	fungicide
कार्बनिक पदार्थ	organic matter
कोलायड	colloid
कीलेट	chelate
कीटनाशी	insecticide
क्षिप्ति	cast
कृष्य भूमि	arable land
खनिजीकरण	mineralization
खरपतवारनाशी	weedicide
खाद्य–शृंखला	food chain
खाद्य–जाल	food web
खाद्यान्न	cereals
गंध	smell, odour

गुणधर्म	property
घुलनशीलता	solubility
जल–अपघटन	hydrolysis
जल–निकास	drainage
जलोढ मृदा	alluvial soil
जैव भार	biomass
जिप्सम	gypsum
जीवनाशी	biocide
जीवाणु	bacteria
जैव पदार्थ	organic matter
जैविक क्रियाए	biological reactions
जैविक प्रक्रिया	biological process
जैवनिकरणीय	biodegradable
ठोसीकरण	solidification
तनूकृत	diluted
तलछटीकरण	sedimentation
तापमान	temperature
ताजा वाहितमल जल	fresh sewage water
तेलशोधक कारखाना	refinery
दिशा निर्देश	guidelines
दीर्घ स्थायित्व	persistence
दोमट मृदा	loamy soil
दुर्गधं	foul smell
धनायन विनियम क्षमता	cation exchange capacity
नाइट्रीकरण	nitrification

नाइट्रोजनी उर्वरक	nitrogenous fertilizer
नाइट्रोजन–चक्र	nitrogen cycle
निपटान	disposal
निक्षालन	leaching
निष्कर्षण	extraction
परास	range
पर्यावरण	environment
पाचन	digestion
पाचित	digested
पारितंत्र	ecosystem
पी.एच.	PH
पीड़कनाशी	pesticide
पुनः उपयोग, पुनउपयोग	reuse
पोषक तत्व	nutrient
प्रदूषक	pollutant
प्रदूषण	pollution
प्रबंधन	management
फसल–आर्वतन	crop rotation
बलुई मिट्टी	sandy soil
बहिः स्राव	effluent
बायोगैस	biogas
बीमारी	sickness
भारी धातु	heavy metal
मानकीकरण	standardization
मृदा प्रदूषण	soil pollution
रोगाणु	pathogen

वनस्पति	vegetation
वानस्पतिक वृद्धि	vegetational growth
वायु मिश्रण, बातन	aeration
वाहितमल उपचार	sewage treatment
विनाइट्रीकरण	denitrification
विनिमेय	exchangeable
विनिमय क्षमता	exchange capacity
विलेयता	solubility
विषाणु	virus
शहरी अपशिष्ट	city waste
शुष्कन	drying
शुष्क पदार्थ	dry matter
संकुलन	complexation
संग्रथित	integrated
संघटन	composition
संचयन	accumulation
सक्रियता	activity
सूक्ष्मजीव	microorganism
सहनशील	tolerant
स्थूल घनत्व	bulk density
संस्तर	horizon
सतही जल = भूपृष्ठ जल	surface water
सांद्रता	concentration
संशोधन	amendment
सुधारक	ameliorant
सूचक पौधा	indicator plants

समन्वित	integrated
सूक्ष्मजैविक क्रिया	microbiological activity
स्वपोषित जीवाणु	autotrophic bacteria
ह्यूमस	humus
क्षरण–अपरदन	erosion
क्षारीयता	alkalinity
क्षारीय मृदा	alkaline soil

GMGIPN-22/HRD/ND/2018-1,000 Books

© भारत सरकार
प्रकाशन नियंत्रक

PED-1000
1000-2018 (DSK-II)

ISBN 978-81-939664-2-6

मूल्य :
Price : ₹ 102/-

Mobile App of Administrative Terms Glossary is now available in Google Play Store.

Step-1: Search CSTT • Step-2: Download • Step-3: Open to use

वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग
मानव संसाधन विकास मंत्रालय (उच्चतर शिक्षा विभाग), भारत सरकार
पश्चिमी खंड-7, रामकृष्णपुरम, नई दिल्ली - 110066.

Commission for Scientific and Technical Terminology
Ministry of Human Resource Development
(Department of Higher Education), Govt. of India
West Block-7, R.K. Puram, New Delhi - 110066.
☎ 011-26105211 • Website: www.cstt.mhrd.gov.in
www.csttpublication.mhrd.gov.in